श्रीजानकी वल्लभो विजयते ।

श्रीहनुमते नमः ।

श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

# श्रीमद्गोस्वामि-चरितम् ।

( इस लेख का सर्वाधिकार लेखक के स्वाधीन है । )

अथ मङ्गलाचरणम्

जीवान्मन्दमतीं सुभाग्य रहितां ज्ञात्वा कलेर्दोषत-
स्तत्कल्याण परायणः पर कविः श्रीमन्महर्षिस्स्वयम् ।
वाल्मीकिः कृपया सुहृत्सु तुलसीदासेति नाम्ना कला-
वाविर्भूय चकार रामचरितंभाषा प्रबन्धेन वै ॥

कलिकुटिल जीव-निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयौ ।
चेता काव्य निबंध करिव सतकोटि रमायन ।
इक अक्षर उच्चरैं ब्रह्महत्यादि परायन ॥
अब भक्तनि सुखदैन बहुरि लीला बिस्तारी ।
रामचरन रस मत्त रटत अहनिसि व्रतधारी ॥
संसार अपार के पार को सुगम रूप नवका लयौ ।
कलिकुटिल जीव-निस्तार हित वाल्मीकि तुलसी भयौ ॥

---

काशी-नागरी-प्रचारिणी-सभा के विद्वान् सम्पादकों ने " श्रीरामचरितमानस " का शुद्ध संस्करण सम्पादित करते समय " गोस्वामीजी के जीवनचरित्र की उपलब्धि" पर विचार करते हुए लिखा है: —

" सबसे प्रामाणिक वृत्तान्त बतलानेवाला ग्रन्थ, वेणीमाधवदास कृत " गोसाईंचरित " है, जिसका उल्लेख बाबू शिवसिंह सेंगर ने " शिवसिंहसरोज " में किया है । परन्तु खेद का विषय है कि न तो अब वह ग्रन्थ ही कहीं मिलता है और न शिवसिंहसरोजकार ने उसका संक्षिप्त वृत्तान्त ही अपने ग्रन्थ में लिखा । वेणीमाधवदास कवि पसका ग्राम निवासी थे और गोसाईंजी के साथ सदा रहते थे । "

ऊपर जिस प्रामाणिक ग्रन्थ का उल्लेख हुआ है उसका अन्तिम अध्याय, सौभाग्य से, भगवत् की असीम कृपा से, हमें प्राप्त हो गया है। इस अध्याय का नाम "मूल गोसाईंचरित" है। इसमें संक्षेप से बाबा वेणीमाधवदासजी ने नित्य पाठ करने के अभिप्राय से, सम्पूर्ण चरित्र का उल्लेख कर दिया है। अस्तु। आज हम उसी सबसे प्रामाणिक ग्रन्थ के आधार पर अपनी तुच्छ बुद्धि के अनुसार संसार के अद्वितीय ऋषि-कवि, हिन्दी-कवि-सम्राट्, जगद्गुरु, परमाचार्य्य वर्य्य श्री १००८ गोस्वामी तुलसीदासजी का पावन चरित्र अङ्कित करने की चेष्टा करते हैं। इसमें जहाँ तहाँ जो अवतरण दिये गये हैं वे उसी ग्रन्थ के हैं और अन्त में "मूल गोसाईंचरित" भी अविकलरूप से जोड़ दिया गया है।

इति प्रस्तावना।

# महर्षि के अवतरित होने के समय

## लोक-धर्म्म की अवस्था।

इतिहासवेत्ता इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि विक्रम की पन्द्रहवीं-सोलहवीं शताब्दी में भारतीय-धर्म्म रूपी समुद्र में सुप्रसिद्ध भक्ति आन्दोलन की लहरें उठ रही थीं। उसी समय चैतन्य महाप्रभु के भाव-प्रवाह द्वारा बङ्गदेश में और अष्ट-छाप के कवियों के संगीत स्रोतद्वारा उत्तर भारत में प्रेम की धारा प्रवाहित हुई थी। उस आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य यह था कि जीवन में बुद्धि के अनुचित और अत्यधिक साम्राज्य का नियमन किया जाय, और उसके स्थान में हृदय का समुचित परिमाण में प्रयोग। उस समय के पण्डितों ने हार्दिक शक्तियों की अवहेलना करके बौद्धिक शक्तियों का विशेष उपयोग किया था, और दार्शनिक की भाँति बाल की खाल निकाल कर कर्मकांड को चरमसीमा तक पहुँचा दिया था। नए-नए सम्प्रदायों की खींच-तान के कारण आर्य-धर्म्म का व्यापक स्वरूप आँखों से ओझल हो रहा था और एक देश-दर्शिता बढ़ रही थी। जो एक कोना देख पाता था, वह दूसरे कोने पर दृष्टि रखनेवालों को बुरा-भला कहता था। शैवों, वैष्णवों, शाक्तों और कर्मठों की "तू-तू-मैं-मैं" तो थी ही, बीच में मुसलमानों से अविरोध प्रदर्शन के लिए भी अपढ़ जनता को अपने साथ में घसीटने वाले कई नए पंथ निकल चुके थे। उनमें एकेश्वर-वाद का कट्टर स्वरूप, उपासना का आशिकी रंग-ढंग, ज्ञान-विज्ञान की निन्दा, विद्वानों का उपहास, वेदान्त के महा वाक्यों का अनधिकार प्रयोग आदि सब कुछ था।

भारतीय महा-युद्ध के अवसर पर दुरात्मा दुर्योधन ने जो कुपाठ पढ़ाया था वह हिन्दू परिवार में अच्छी तरह व्याप्त होगया था। घर-घर भाई-भाई में कलह उपस्थित होगया था जो बढ़ते-बढ़ते सम्पूर्ण राष्ट्र में व्याप्त होकर अनेक जयचन्दों की सृष्टि करके देश को विदेशियों और विधर्मियों के आधीन कर दिया था।

ऐसे समय में, जब अन्यप्रकार के अत्याचारों और उत्पातोंकी बात दूर रहे, मत-मतान्तर

के झगड़ों से लोगों की बुद्धि भ्रान्त हो रही थी, जब शैव और वैष्णव लोग परस्पर विरोध रखना ही मानो अपने इष्टदेव की उत्कृष्ट उपासना समझते थे, जब रामोपासक और कृष्णोपासक परस्पर एक दूसरे को नीचा दिखाने ही में अपनी धर्मज्ञता और ईश्वर की प्रसन्नता मानते थे, सर्व-शक्तिमान् परमात्मा ने दुःखियों का दुःख दूर करने, सुखियों को अधिकतर सुखी बनाने, धर्म-विरोध की ज्वाला शान्त करने, धर्म-जिज्ञासुओं की तृष्णा को बुझाने और वर्त्तमान तथा भविष्य के युवकों एवं उदार चेताओं को देखने, सोचने और अनुभव करने की योग्यता देकर उन्हें परम उत्साही, साहसी तथा पक्का धार्म्मिक बनाने के लिए आदि कवि महर्षि वाल्मीकि को मनुष्यलोक में भेजने का उपयुक्त अवसर निश्चित किया।

## प्रादुर्भावना।

प्रकृति के साम्राज्य में विना कारण के कोई कार्य नहीं होता, यह अटल और व्यापक नियम है। अस्तु। पवित्र वेदों के आचार्य्य सृष्टिकर्त्ता चतुर्मुख ब्रह्मा हैं और शतकोटि रामायण के आचार्य्य आदि कवि महर्षि वाल्मीकि हैं। सच तो यह है कि समष्टि सृष्टि के ब्रह्मा एवं व्यष्टि सृष्टि के वाल्मीकि एक ही हैं। पुनीत वेदों में जिस परम तत्व का सूक्ष्मरूपेण निरूपण हुआ है उसी का आख्यान रामायण में है *। ज्ञान-शक्ति कौशल्या, उपासना-शक्ति सुमित्रा और क्रिया-शक्ति कैकेयी युक्त दशाङ्ग परिपूर्ण वेद स्वयम् महाराज दशरथ हैं †। निजांश युक्त (तीनों भाइयों के सहित) श्रीरामचन्द्रजी प्रणव (ओंकार) के स्वरूप हैं। इसी अभिप्राय को लक्ष्य करके महर्षि वाल्मीकि ने श्रीमद्रामायण का निर्माण किया, भगवत् ने अवतार लेकर उसीके अनुसार पवित्र लीला विस्तार किया और परम भागवत भगवान् शिवजीने त्रिलोकीमें शतकोटि रामचरित्र का वितरण करके सारतत्त्व "श्रीरामनाम" स्वयम् ग्रहण किया ‡।

श्रीरामनाम प्रणव का प्राण है और प्रणव के शीर्षस्थान में रेफ-बिन्दुरूप से सुशोभित है। श्रीहनुमान्जीने, जो वास्तव में शिवजी ही हैं, श्रीरामचरित का वर्णन करते हुये उसी प्रणव के प्राणस्वरूप श्रीरामपरत्व का प्रतिपादन किया। इस गूढ आध्यात्मिक तत्त्व युक्त अद्भुत रचना को देखकर महर्षि वाल्मीकि आनन्दमग्न होगए। महामुनिकी यह प्रेम पूर्ण दशा देखकर श्रीपवनकुमार ने प्रसन्न होकर उनसे वर मांगने को कहा। अस्तु, महर्षि ने भगवान् आञ्जनेय से प्रार्थना की—"भगवन्! यह गुप्त रहस्य है, इसे प्रकाशित मत कीजिये। मैं आप से यही वर मांगता हूं।" श्रीमारुतनन्दनजी ने उस प्रार्थना को स्वीकार तो कर लिया परन्तु उस वरदान के अन्तर्गत स्पर्द्धा का भाव निहित समझकर उन्हें कलियुग में जन्म

---

* वेदवेद्ये परे पुंसि जाते दशरथात्मजे। वेदः प्राचेतसादासीत्साक्षाद्रामायणात्मनः॥

† तासां क्रिया तु कैकेयी सुमित्रोपासनात्मिका। ज्ञानशक्तिश्च कौशल्या वेदो दशरथो नृपः॥

‡ "रामचरित शतकोटि महँ लिय महेश जग जान।"

लेने का शाप भी देदिया। महामुनि ने इस शाप को सहर्ष अङ्गीकार करलिया। मुनि की सहनशीलता से प्रसन्न होकर यह कहकर उन्हें आश्वासन दिया कि "कलि में जन्म लेने पर मैं कलि-प्रपञ्च से आपकी रक्षा करूंगा" *।

उसी शाप के कारण आदि-कविरूपी बाल-मार्तण्ड ने हुलसीरूपणी उद्‌घाटी से उदय होकर कलि-कलुषरूपी तिमिर-पुञ्ज का नाश कर दिया और सुर-सन्तरूपी कमलकुल को विकसित किया। साहित्याचार्य्य स्वर्गीय पं० अम्बिकादत्त व्यास ने ठीक ही कहा है:—

"डगर-डगर अरु नगर-नगर माहिं कहनि पसारी राम-चरित-अवलि की।
कहैं 'कवि अम्बादत्त' रामही की लीलन सों भरि दीनी भीर सबै चहलि-पहलि की॥
शूद्रन ते ब्राह्मण लौं मूरख ते पण्डित लौं रसना डुलाई सबै 'जय-जय' बलि बलि की।
यम को भगाय, पाप-पुंज को नशाय, आज तुलसी गोसाईं नाक काट लीनी कलि की॥

अस्तु। प्रसिद्ध नगर रामापुर से सम्बद्ध दूबे-पुरवा ("दूबन को पुरवा") यमुना किनारे अवस्थित था। उसमें सभी जाति के लोग बसते थे। उसी ग्राम में राजापुर रियासत के राजगुरु भी रहते थे। वे पराशर गोत्री सरयूपारी ब्राह्मण थे। उनके पूर्वज पतेजी स्थान में रहते थे। अतः वे पतेजी अथवा पत्योंजा के दुबे कहलाते थे और 'झुरखे' उनके कुल का "अल्ल" था। वे बड़े पुण्यात्मा, विद्वान्, धन-धान्य से सम्पन्न और सत्पात्र ब्राह्मण थे। वे वहां के प्रतिष्ठित पुरुषों में मुख्य थे। उन्हीं के घर अर्थात् उनकी धर्मपत्नी हुलसी माता के गर्भ से, बारह मास से भी अधिक गर्भवासके उपरान्त †। संवत् १५५४ में श्रावण शुक्ला सप्तमी शनिवार को सन्ध्या समय, जब कर्क के बृहस्पति और चन्द्रमा, सप्तम मंगल और अष्टम शनैश्चर पड़े थे, श्रीमद्गोस्वामी तुलसीदासजी ने जन्म लिया ‡।

साधारण गर्भकाल से ज्यों ज्यों दिन अधिक बीतते जाते थे, त्यों त्यों राजगुरु-परिवार में चिन्ता और व्याकुलता बढ़ती जाती थी। ऐसी दशा में पुत्रोत्पत्ति के शुभ समाचार ने सबके हृदय में उत्साह और आनन्द भर दिया। बधावा बजने लगे, स्त्रियां सोहर गाने लगीं और अन्य माङ्गलिक व्यवहार होने लगे। नेगी-योगी आने लगे और सबका उचित सत्कार होने लगा। परन्तु यह उल्लास-लहरी समुद्र-तटकी लहर की तरह क्षणिक थी। राजगुरु बरोठे में बैठे हुये मोछें सँवार रहे थे। ग्रामवासी भी दो चार पास में बैठे हुए थे। मंगन दान-मान

---

* यह प्रसंग कुछ हेर-फेर के साथ "आनन्दरामायण में भी आया है।

† श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु का जन्म भी प्रलम्बित सुदीर्घ काल तक गर्भवासके उपरान्त हुआ था।

‡ मूल इस प्रकार है:—

सर वार सुदेश के विप्र बड़े। शुचि गोत पराशर टेक कड़े॥
शुभ थान पतेजि रहे पुरखे। तेहिते कुल नाम पड़्यो झुरखे॥
यमुना तट दूबन को पुरवा। बसते सब जातिन के कुरवा॥
सुकृती सत्पात्र सुधी सुखिया। रजिया पुर राज गुरू मुखिया॥
तिनके घर द्वादश मास परे। जब कर्क के जीव हिमांशु चरे॥
कुज सप्तम अष्टम भानु-तनय। अभिजित शनि सुन्दर सांझ समय॥

से सन्तुष्ट किये जा रहे थे। इतने में एक दासी भीतर से आई और कहने लगी—"महाराज! घर में चलिये, बुलाने आई हूं। कारण यह है कि आपका पुत्र एक तो अन्य बच्चों की तरह जन्मतेही रोया नहीं, दूसरे पृथ्वी पर गिरते ही उसने स्पष्टरूप से "राम," ऐसा शब्द कहा। अब देखने से मालूम हुआ कि बत्तीसों दांत उसके मुँह में जमे हुये हैं, पंक्ति में कोई भी स्थान रिक्त नहीं है। जान पड़ता है कि वह आज का जन्मा नहीं प्रत्युत पांच वर्ष का बालक है। मैं दुनियां देखती देखती बूढ़ी होगई परन्तु अब तक कहीं भी मैंने ऐसा शिशु नहीं देखा। महरी (चमाइन) कहती है कि जब उसने शिशु का नाल काटा था तब उसे ऊपर से शङ्ख-ध्वनि सुनाई पड़ी थी। जो स्त्रियाँ वहाँ बैठी हुई हैं, यह आश्चर्य्यजनक दृश्य देखकर मारे डर के कांप रही हैं, झँख रही हैं और कह रही हैं कि अवश्यही किसी राक्षस ने जन्म लिया है। यह सब देख-सुनकर प्रसूती के मन में जितना दुःख होरहा है उसका अनुमान करना भी कठिन ही है। अतएव, अब आप निर्विलम्ब भीतर चलें और प्रसूती को समझा-बुझाकर, आश्वासन देकर उसके हृदयस्थ दारुण ताप को शान्त करें।"

दासी के वचन को सुनकर राजगुरु तुरत उठे, भीतर गये और प्रसूतीगृह-द्वार पर खड़े हुए। शिशु को देखकर बहुत दुःखी हुए और पूर्व जन्मार्जित पाप का परिणाम समझते हुये बाहर चले गए। तदुपरान्त इष्ट-मित्र, भाई-बन्धु और ज्योतिर्विद् सभी जमा हुये और विचारने लगे कि इस शिशु को क्या किया जाय। बहुत वाद-विवाद के अनन्तर यह निश्चय हुआ कि तीन दिन के बाद यदि बच्चा जीवित रहे तो फिर से इस प्रश्न पर विचार करके उचित कर्तव्य निर्धारित किया जायगा।

**पन्द्रह सै चउअन विषै, कालिन्दी के तीर। श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी धरेउ शरीर॥**

## शिशु-स्थानान्तरीकरण

### माता का शरीर-त्याग।

दशमी के उपरान्त जब एकादशी लगी और आठ घड़ी रात बीत गई तब माता हुलसी ने अपनी प्रिय दासी से कहा-"सखि! अब शरीर-पञ्जर को छोड़कर यह प्राण-पखेरू उड़ना चाहता है। सो, तुम इस प्यारे शिशु को लेकर अभी हरिपुर अपनी सास के पास चली जाव। वहां जाकर मेरे इस प्यारे पुत्र को पालना, सब प्रकार से इसकी रक्षा करना। भगवान् तुम्हारा कल्याण करेंगे। नहीं तो यह निश्चय जान रक्खो कि मेरे मरने पर वे पठित-मूर्ख इस बच्चे को जरूर फेंक देंगे। सखि! इस बात को कोई जानने न पावे, रात ही में रास्ता फट जाय और दिन चढ़ते चढ़ते तुम वहां पहुँच जाव, तभी अच्छा है *।"

---

* इसी स्थानान्तरीकरण की बात नहीं मालूम होने के कारण श्रद्धेय स्वर्गीय महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी आदि महानुभावों को 'अभुक्त मूल' की कल्पना करनी पड़ी थी, क्योंकि और कोई उपाय ही नहीं था। अब सब बातें स्पष्ट होगईं और "जायो कुल मंगल बधावनो बजायो सुनि भयो परितापु-पाप जननी-जनक को" एवं "सुकुल जनम" तथा "मातु-पिता जगजाइतज्योबिबिहू न लिख्यो कछु भाल भलाई।"—इन सब वचनों की संगति लग गई।

इस प्रकार अन्तिम विनय कर, भली भांति आश्वासन देकर तथा अपना भूषण प्रदान कर माता हुलसी ने उसकी गोद में बच्चे को सौंप दिया और उसे बिदा कर दिया। बहू तो शिशु को लेकर चुप-चाप चली गई यह पुत्र-वियोग में माता का और बुरा हाल हो गया। उन्होंने विधि-हरि-हर को स्मरण करके प्रार्थना की—"भगवन्! मेरे सर्वस्व की रक्षा कीजिएगा।" यह अन्तिम प्रार्थना थी। उसी एकादशी को ब्रह्ममुहूर्त्त में माता हुलसी ने शरीर त्याग कर स्वर्गारोहण किया। प्रातःकाल यमुना-तट पर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया सम्पन्न हुई।

## हरिपुरप्रसङ्ग

### दैवी-रक्षा।

पांच बड़ी दिन चढ़े चुनिया दासी हरिपुर में अपनी सास के पास पहुँची। पालागन के बाद उसने सब हाल अपनी सास से कह सुनाया। सुनकर सास ने कहा—"बहू! तू ने बड़ा ही अच्छा काम किया। तेरे घर कलोर गाय है। उसका दूध पिलाकर इस मातृहीन शिशु को जिला ले।"

अस्तु, वह दासी शिशु को प्रेम-पूर्वक पालने लगी। उसकी रीझ-बूझ, बाल हठ और लाड़-प्यार पर भी पूर्णरूप से ध्यान देती रही। ६५ महीने अर्थात् पांच वर्ष और पांच महीने इसी प्रकार बीत गए और बालक बोलने और चलने-फिरने लग गया। परन्तु दुर्दैव से यह भी देखा नहीं गया। एक दिन चुनिया कोरार में गई, वहां एक विषधर सर्प ने उसे डस दिया और वह बात की बात में स्वर्ग को सिधार गई। द्विज-बालक सचमुच अनाथावस्था को प्राप्त होगया। अब कोई भी उसे पूछनेवाला नहीं रह गया। ग्रामवासियों ने एक नाई के द्वारा चुनिया दासी की आकस्मिक मृत्यु का समाचार राजगुरु से कहला भेजा और बालक को अपने पास बुलालेने की प्रार्थना की। दयाहीन, वज्रहृदय, नृशंस पिता ने कोरा जवाब दे दिया। उन्होंने कहा—"हम ऐसे बालक को लेकर क्या करेंगे जो अपने पालन-पोषण-कर्त्ता का ही नाश कर देता है।" पिता के इस तिरस्कार का प्रभाव हरिपुर ग्रामवासियों पर ऐसा पड़ा कि बालक के प्रति उनके हृदय में रही-सही सहानुभूति भी जाती रही। इस पर चरित्रकार कहते हैं:—

**"बेणी पूरब जनम कर करम-विपाक प्रचंड।**
**बिना भोगाये टरत नहिं यह सिद्धान्त अखंड॥**
**छं०—सिद्धान्त अटल अखंड भरि ब्रह्मंड व्यापित सत यथा।**
**जहँ मुनिवरन की यह दशा तहँ पामरन की का कथा॥**
**निज छति विचारि न राख कोऊ दया दृग पाछे दियो।**
**डोलत सो बालक द्वार-द्वार विलोकि तेहि विहरत हियो॥"**

(मू० गो० च०)

अर्थात् पूर्व जन्मार्जित कर्मों के बन्धन से बिना भोगे छुट्टी नहीं मिलती। यह अखण्ड सिद्धान्त सत्य की तरह ब्रह्माण्ड भर में व्याप रहा है। बड़े-बड़े मुनियों की जब यह दशा है तब

पामर जीवों की कौन चर्चा ! गीता में भगवान् ने कहाहै कि "गहना कर्मणो गतिः"—तात्पर्य्य यह कि कर्म की गति कठिन है, इतना ही नहीं किन्तु कर्म का बन्धन भी बड़ा कठिन है। कर्म किसी से भी नहीं छूट सकता। वायु कर्म से ही चलती है, सूर्य चन्द्रादिक कर्म से ही घूमा करते हैं और ब्रह्मादि सगुण देवता भी कर्मों में ही बँधे हुए हैं। इन्द्र आदि का क्या पूछना है।

जान पड़ता है कि यह महर्षि वाल्मीकि के जीवन की आद्यवस्था पर लक्ष्य करके लिखा गया है जब वे द्विजकुल में उत्पन्न होनेपर भी शूद्रा से प्रीति करके वटपारी किया करते थे और सप्तर्षिके उपदेश से उन्होंने एक बारगी पत्नी-परिवार को त्याग दिया था। क्योंकि महाभारत में लिखा है:—

**येषां ये यानि कर्माणि प्राक्सृष्ट्यां प्रतिपेदिरे।**
**तान्येव प्रतिपद्यन्ते सृज्यमानाः पुनः पुनः॥**

(म.भा. शां. २३१. ४८-४९)

अर्थात् 'पूर्व की सृष्टि में प्रत्येक प्राणी ने जो-जो कर्म किये होंगे, ठीक वेही कर्म उस (चाहे इच्छा हो या न हो) फिर फिर यथापूर्व प्राप्त होते रहते हैं।"

संसार में पिता-माता से बढ़कर बालक का रक्षक कोई नहीं है। माता तो पहिले ही चल बसी थी। रहे पिता, सो उन्हों ने मिथ्या लाञ्छन लगाकर अपने उचित कर्त्तव्य के पालन से भी इनकार कर दिया। अब भला कौन उसे अपनावे ? यह बात नहीं कि ग्राम-वासियों को उसकी दशा पर दया न आती हो ! आती जरूर थी, परन्तु अपने हित की हानि विचार कर वे दयाभाव से अपना मुँह फेर लेते थे। उसे अपने घर आश्रय देने का साहस नहीं करते थे; क्योंकि यह बात उनके मन में बैठ गई थी कि जो उससे संसर्ग रक्खेगा उसका सर्वनाश होजायगा। अस्तु, वह अनाथ बालक कभी इस द्वार पर, कभी उस द्वार पर भटकता फिरता था। कभी कोई कुछ देदेता तो लेकर खालेता *।

बालक की दीन दशा देखकर जगज्जननी गौरीजी को दया लगी। वे ब्राह्मणी का रूप धारण कर नित्य आतीं और उसे पवाकर चलीजातीं †। इस तरह दो वर्ष और बीते। अब कतिपय ग्राम-वासियों की दृष्टि उस ब्राह्मणी पर आकर्षित हुई। लोग पता लगाने लगे, परन्तु बहुत चेष्टा करने पर भी वे उसका परिचय न पासके। सुतराम् एक चार-नारी (गुप्त बातों की पता लगाने वाली दूती) कई दिनों से ताक में लगी हुई थी, उसे परख रही थी। ज्यों ही माता बालक को खिला-पिला कर जाने लगीं त्योंही वह वहाँ पहुँची और देवी के चरणों में लिपट गई और परिचय पूछने लगी। उसने बहुत हठ किया, देवी को जाने ही नहीं देती थी। तब जगदम्बा अदृश्य होगईं। इस चरित्र से ग्रामवासियों के भाव बदले। वे समझ गए कि दीन जनों की सुध दीनबन्धु परमात्मा अवश्य लेते हैं।

---

* अपनी हीनता दिखाने के लिये गोस्वामीजी ने जो कहीं कहीं आत्म-चरित्र का उल्लेख किया है उसमें इस दशा का स्पष्ट वर्णन है, यथाः—
"बारे ते ललात बिललात द्वार द्वार दीन जानत हौं चारि फल चारिये चनक को।"

† गुरु-पितु-मातु महेश-भवानी। प्रणवौं दीनबन्धु दिन-दानी॥

"दीनबन्धु बिनु दीन की को रहीम सुधि लेइ ।"

## उपनयन-संस्कार
## और
## मंत्रोपदेश, शूकर-खेत सत्सङ्ग ।

दिव्य ब्राह्मणी का आना-जाना उसी दिन से बन्द होगया । तब भगवान् शङ्कर ने अपनी प्रिया की रुचि जानकर द्विज-बालक के कल्याण के लिए मानव-जन-सुलभ लौकिक व्यवस्था करदी । चित्रकूट में स्वामी अनन्तानन्दजी के प्रिय शिष्य स्वामी नरहर्य्यानन्दजी, * कुटी

* श्रीनरहर्य्यानन्दजी श्रीअनन्तानन्द स्वामी के एक सुयोग्य और प्रिय शिष्य थे, जैसा श्रीगोसाईं-चरितकार बाबा वेणीमाधवदासजी लिखते हैं—"प्रिय शिष्य अनन्तानन्द हते । नरहरर्य्यानन्द सुनाम छते ॥" यही नरहर्य्यानन्दजी जिनको नरहरिदास भी कहते हैं गोस्वामी तुलसीदासजी के गुरु थे तथा उनके दादा गुरु श्रीअनन्तानन्दजी श्रीमद्यतीन्द्र रामानन्द स्वामी के द्वादश शिष्यों में मुख्य थे । बाबा वेणीमाधवदासजी की लिखी परम्पराकी पुष्टि नाभास्वामी भी करते हैं, यथा—"योगानन्द गणेश करमचन्द अल्हू पैहारी । सारी रामदास श्रीरङ्ग अवधि गुण महिमा भारी ॥ तिनके नरहरि उदित मुदित महामङ्गल तन । रघुवर यदुवर गाय विमल कीरति सञ्च्यो धन ॥ हरिभक्ति सिन्धु वेला रचे पानिपद्मक सिर दिये । अनन्तानन्द पद परसि के लोकपाल से तें भये ॥"अर्थात् श्रीनरहरिदासजी श्रीअनन्तानन्दजी के अष्ट शिष्यों में से थे । "रघुवर-यदुवर गाय विमल कीरति सञ्च्यो धन" से स्पष्ट है कि वे श्रीराम कृष्ण की कथा कहने के लिए प्रसिद्ध थे । रघुवर-यदुवर का यशोगान करके विमल कीर्त्ति-रूप धन का सञ्चय किया । "विमल कीरति" का "रघुवर-यदुवर" एवम् "सञ्च्यो धन" इन दोनों पदों में देहली-दीपकन्याय के अनुसार अन्वय होगा । वह इस तरह कि "रघुवर-यदुवर विमल कीरति गाय विमल कीरति धन सञ्च्यो।" ऐसी पदयोजना न करने से पुनरुक्ति अथवा कथित पद दोष के आजाने का भय था । अस्तु । श्रीनरहरिदासजी के प्रसिद्ध तथा यशस्वी कथा वाचक होने की ध्वनि गोस्वामीजी की इस उक्ति से भी निकलती है—"मैं पुनि-निज गुरुसन सुनी कथा सुसूकर खेत ।"

गोस्वामीजी की इस प्रकार स्पष्ट गुरु-परम्परा लिखने वाले ये दोनों लब्धप्रतिष्ठ महात्मा बाबा वेणी-माधवदासजी एवम् श्रीनाभास्वामी उनके समसामयिक थे । अतः उनका गोस्वामीजी के सम्बन्ध में कुछ लिखना परम प्रामाणिक एवम् सर्व्वमान्य है । बाबा वेणीमाधवदासजी तो गोस्वामीजी के बराबर साथ ही रहे हैं और निम्नस्थ परम्परानुसार नाभास्वामी गोस्वामीजी के भतीजे चेले थे । अस्तु ; उनकी निर्दिष्ट गोस्वामिपाद-सम्बन्धिनी गुरु-परम्परा असंदिग्ध, निर्विवाद अत एव ग्राह्य है । श्रीअयोध्याजी के प्रसिद्ध रामायणी बाबा रामबालकदासजीने अपने सम्पादित श्रीरामचरितमानस में भी यही परम्परा दी है ।

श्रीरामानन्दस्वामी
|
श्रीअनन्तानन्दजी
|
श्रीनरहर्य्यानन्दजी — श्रीकृष्णदासजी पैहारी
| |
गो० तुलसीदासजी — श्रीअग्रस्वामीजी
|
श्रीनाभास्वामीजी

गोस्वामीजी की कोई प्रामाणिक जीवनी न मिलने से उनके जीवनकी अनेक घटनाओं एवम् गुरु-

बनाकर रहते थे। वे भगवत् के अनन्यभक्त थे और सदा तल्लीनदशा में प्राप्त रहते थे। वे श्रीहरिके परम प्रिय थे। भगवान् ने उन्हें साक्षात् दर्शन देकर कृतार्थ किया और श्रीरामचरितमानस उन्हें सुनाकर कहा—"यहां से थोड़ी दूर पर हरिपुर ग्राम में एक अनाथ द्विज-बालक है। वह वास्तव में महर्षि वाल्मीकि का अवतार है। उसकी रक्षा, शिक्षा और दीक्षा के लिए मैंने तुम्हें उपयुक्त पात्र समझा है। अतः तुम अभी वहां जाव और उसे लेकर श्रीअवध चले जाव। वहां उसे विधिपूर्वक श्रीराममन्त्रराज का उपदेश करके मम निर्मित श्रीरामचरितमानस, जिसे अभी मैंने तुम्हें सुना-समझा दिया है, उसे बार-बार सुनाओ और समझावो, अच्छी तरह से उसकी बुद्धि और मन में जमा दो। सयाने होने पर जब उसकी हृदयकी आंखें खुलेंगी तब वह उसे विस्तारपूर्वक वर्णन करेगा। बालकपन में जो संस्कार पड़ जाता है वह आजन्म बना रहता है। लड़कपन में जो तैरना सीख लेता है, उत्तर जीवन में अवसर पड़ने पर उसको उससे बड़ी सहायता मिलती है।" इस प्रकार उपदेश देकर भगवान् भूतनाथ अन्तर्हित होगए।

भगवान् शङ्कर के गम्भीर वचन को सुनकर स्वामी नरहर्य्यानन्द प्रफुल्लित होगए। अपने इष्टदेव श्रीरामचन्द्रजी का स्मरण करके वे उसी समय हरिपुर के लिए रवाना हुए। वहां पहुँचकर उन्होंने द्विज-पुत्रका पता लगाया। उसे पाकर और अपनी गोद में बैठाकर उस अनाथ-बालक को सनाथ कर दिया। उन्हों ने कहा—"राम बोला ! * तू सोच मत कर। भगवान् सब भांति से तेरा पालन-पोषण करेंगे।" अनन्तर उन्हों ने ग्रामवासियों से सम्मति लेकर बालकसहित वहां से प्रस्थान किया। कुछ दिनों में वे अयोध्यापुरी में पहुँचगए। उपयुक्त स्थानपर टिक कर उन्होंने पुरी की गलियों में भ्रमण किया अर्थात् अन्तर्गृह की परिक्रमा की। तत्पश्चात् माघसुदी ५ (वसन्त पञ्चमी) सं० १५६१ शुक्रवार को सरयू-तट पर उपनयन यज्ञ कराकर विप्रकुमार को यज्ञोपवीत प्रदान किया। जब आचार्य्य ने गायत्री मंत्र का उपदेश किया तब उपनीत बालक ने विना सिखे-सिखाये सावित्री मंत्र का उच्चारण आपसे आप ऐसी शुद्धता से किया कि सब पण्डित विस्मित

---

परम्परा के सम्बन्ध में बहुत भ्रम फैल गया है। डाक्टर ग्रियर्सन ने भी उनकी गुरु-परम्परा दी है। उन्हें दो परम्पराएँ मिली हैं। दोनों प्रायः मिलती-जुलती हैं। उनमें कोई विशेष अन्तर नहीं। पटने में जो मिली है उसमें रामानुजस्वामी के पूर्व की परम्परा नहीं है। दूसरी पूरी है। उनमें नामों में कुछ अन्तर है एवम् पटनेवाली में कोई कोई नाम नहीं हैं। परन्तु उनमें रामानुजस्वामी के बाद (उनका शिष्य) शठकोप स्वामी को लिखा है जो सर्वथा अशुद्ध और विरुद्ध है रामानुजी परम्परा के अनुसार पहले शठकोपजी, पीछे उनकी सातवीं पीढ़ी में रामानुजस्वामी हुए हैं। इसी प्रकार श्रीरामानन्द सम्प्रदाय से भी वे सर्वथा भिन्न हैं। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा द्वारा प्रकाशित श्रीरामचरितमानस की भूमिका में इन परम्पराओं का खण्डन कर दिया गया है।

* राम को गुलाम, नाम "रामबोला" राख्यौ राम काम यहै नाम द्वै हौं कबहूं कहत हौं। बूझ्यो ज्योंही, कह्यो मैं हूँ चेरो ह्वै हौ रावरोजू मेरो कोऊ कहूँ नाहिं, चरन गहत हौं॥ मांजो गुरु पीठ अपनाइ गहि बाँह बोलि सेवक-सुखद सदा बिरद बहत हौं।

(विनयपत्रिका)

और चकित होगये। वे कह पड़े—"देखने ही में यह बालक अज्ञान मालूम होता है; परन्तु वास्तव में यह बड़ा ही विज्ञ और पूर्व जन्म के दिव्य संस्कारों से भूषित प्रतीत होता है।" तत्पश्चात् स्वामीजी ने वैष्णवोचित पञ्च संस्कार करके उसे श्रीराममंत्रराज का उपदेश दिया जिसे पाकर मनुष्य जन्म-मरण के चक्र से छूट कर मुक्त होजाता है।

वहां श्रीहनुमान्टीले पर स्वामीजी दश महीने रहे। अपने शिष्य को विद्या पढ़ाते रहे, अष्टाध्यायी कण्ठ कराते रहे। उस लघु बालक की धारणा-शक्ति जागृत हुई, भक्ति सहित अनुरक्ति की छटा दिखाने लगी। इन दिव्य गुणों का विकास देखकर मुनिराज बहुत प्रसन्न हुए और चरणसेवा करते समय शिष्य को उन्होंने बहुत आशीर्वाद दिए। उस समय शिष्य ने दिल खोल कर जन्म से लेकर अब तक की अपनी करुण-कथा गुरुवर से कह सुनाई। उसे सुन कर वे आश्चर्य्य-चकित होगए। क्योंकि अत्यन्त अज्ञानावस्था की घटनाओं को स्मरण रखना उस नन्हें बालक के लिए अभूतपूर्व बात थी। करुणारसने उनके विशाल हृदय को व्यथित कर दिया। धीर मुनि के नेत्र अश्रुपूर्ण होगये। गुरु-शिष्यकी, उस समय की, दशा का वर्णन कौन कवि कर सकता है? गुरु ने शिष्य को हृदय से लगाया, बहुत समझा-बुझाकर, भावी कल्याण की बात बताकर उसे शान्ति प्रदान किया।

अनन्तर हेमन्त ऋतु के लगते ही स्वामीजी शिष्य सहित वहां से चलपड़े और मार्गमें कथा-पुराण कहते हुए सरयू-घाघरा के संगम पर शूकर-खेत (वाराहक्षेत्र) में पहुँचे। वहाँ पौष भर कल्पवास होता है और पौर्णमासी को नहान लगता है। वहाँ आप पाँच वर्ष तक जप-तप में संलग्न रहे और शिष्य को शिक्षा भी देते रहे। जब उसको कुछ-कुछ बोध हुआ और उसकी बुद्धि युक्तिवाद में प्रवीणता को पहुँची तब आपको भगवान् शङ्कर का निदेश स्मरण आया। आपने तुरंत "श्रीरामचरितमानस" स्वशिष्य को सुनाना आरम्भ कर दिया। उसके श्रवण से बालक को तत्त्वज्ञान का बोध होने लगा। आपने उस चरित्र को अनेक बार आद्योपान्त सुनाया, उसके तात्पर्य्य को, गूढ़ रहस्य को अच्छी तरह समझाया।*

इस प्रकार भली भांति प्रबोध करके पर्वयोग लगने पर आप शिष्य समेत काशीजी गए रास्ते में कई जगह टिकना पड़ा था क्योंकि अन्न जल बड़ा प्रबल होता है। कहीं पुण्यात्मा जनों को उपदेश देते, और कहीं दीन जनों का दुःख दूर करते थे। अस्तु, प्रसन्न मन से विचरते हुए आप काशीपुरी में पहुँच गए। वहाँ अपने परम गुरु (श्री १००८ स्वामी रामानन्दजी) के शुभ स्थान पर आसन जमाया।

## शिक्षा।

काशीपुरी में पञ्चगंगाघाट बड़ा मनोहर है। वह भगवती भागीरथी का केलिकुञ्ज है। सिद्धपृष्ठों में प्रतिष्ठित है। वहाँ यतीन्द्र श्रीस्वामी रामानन्दजी ने बहुत दिनों तक निवास

* "मैं पुनि निज गुरुसन सुनी कथा सो सूकर खेत। समुझी नहिं तसि बालपन तब अति रहेउं अचेत॥ तदपि कही गुरु बारहिं बारा। समुझि परी कछु बुधि अनुसारा॥

किया है। अतएव उसे बारम्बार नमस्कार है। उसी सुरम्य घाट पर महात्मा शेष-सनातनजी रहते थे। उनका शरीर तो वृद्ध था किन्तु उनका मन तरुण था। वे निगम-आगम के अद्वितीय ज्ञाता थे। उनके मुखचन्द्र से ज्योति की किरणें निकलती थीं। वे अपनी सिद्धाई और तपस्या के लिए सभी श्रेणी के लोगों में प्रसिद्ध थे। उन्हों ने हमारे चरितनायक बाल-ब्रह्मचारी के सुन्दर सरल स्वभाव पर मुग्ध होकर अपनी सम्पूर्ण विद्याओं का एक मात्र अधिकारी और सुयोग्य पात्र उन्हीं को ठहराया। उन्हों ने श्रीस्वामी नरहर्य्यानन्दजी से क्या ही अच्छी बात कही। वे बोले—"हे मुनिराज! आप अपने शिष्य को कृपा-पूर्वक मुझे दीजिए। उसकी वृत्ति सांसारिक नहीं है किन्तु धुनि-ध्यान में संलग्न रहनेवाली है। मैं उसको चारों वेद और षट् शास्त्र पढ़ाऊँगा। तंत्र की शिक्षा दूंगा। इतिहास-पुराण, काव्य-शास्त्र और अपना अनुभव किया हुआ दुर्लभ प्रतीकों (उपासना एवं योग के ध्येय स्वरूप) का फल, सब सिखला दूंगा। इस प्रकार मैं उसे ऐसा प्रकाण्ड विद्वान् बना दूंगा कि आप भी उसका यशोगान सुनकर प्रसन्न होंगे।"

आचार्य्य की हितैषिता से पूर्ण विनय को सुनकर मुनिराज प्रफुल्लित होगए और उसी समय पवित्र गङ्गा तट पर उस ब्रह्मचारी को बुलाकर उन्हें सौंप दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक आप वहाँ विराजते रहे। प्रिय शिष्य के पठन-पाठन पर दृष्टि रखते रहे। जब वह भाष्य पढ़ने लगा, उसका चित्त अध्ययन में खूब लगने लगा और सब तरह से सुपास होने से जब उसके सम्बन्ध में किसी बात की चिन्ता नहीं रहगई तब मुनिराज चित्रकूट को चले गए।

हमारे बाल-ब्रह्मचारीजी वहाँ पन्द्रह वर्ष तक अध्ययन करते रहे। उन्हों ने सम्पूर्ण शास्त्रों के तत्त्व को अच्छी तरह मन्थन किया और उनके सार-सिद्धान्त को ग्रहण किया। विद्यागुरु की सेवा भी सदा तन-मन से करते रहे और उनके शरीरपात पर उनकी अन्त्येष्टि क्रिया भी शुद्ध मन से करके आचार्य्य-ऋण से निवृत्त हुए।

गुरु के तिरोधान के पश्चात् उनका मन विषाद से पूर्ण होगया। वहाँ से उनका जी उचट गया। तब मन-बहलाव के लिए वे अपनी जन्म-भूमि को चल पड़े।

## विवाह

कुछ दिनों में रमते-घूमते वे राजापुर में पहुँच गए। वहाँ उन्हों ने अपने भवन को देखा। वह गिर गया था, केवल चिह्न मात्र कुछ भग्नावशिष्ट अंश उसका बचगया था। साथ ही वहाँ उनका प्रेमपूर्वक स्वागत करनेवाला कोई व्यक्ति भी नहीं था। तात्पर्य्य यह कि परिवार का नाश होगया था। हाँ, एक भाट से भेंट हुई। उसने ग्राम की वार्ता कह सुनाई और यह भी बताया कि विप्रवंश का विनाश किस प्रकार हुआ। उसने कहा—"जिस दिन आपके पिता राजगुरु ने हरिपुर के नाई से आप के सम्बन्ध में तिरस्कार युक्त वचन कहा उसी दिन से उनके कुलपर विपत्ति आन पड़ी। उस समय वहाँ पर कोई तेजस्वी तपस्वी बैठा हुआ था। उससे

नहीं सुनागया। उसने घोर शाप दे दिया जिसका परिणाम यह हुआ कि छः महीने के भीतर ही भीतर राजगुरु स्वर्गवासी होगये और दस वर्ष के भीतर समस्त कुल का नाश होगया।"

इस वार्त्ता को सुनकर हमारे चरितनायक कुछ देरतक शोकमग्न होगये। अनन्तर उन्हों ने विधिपूर्व्वक श्राद्ध किया पिण्डदान दिया। ग्रामवासियों के अनुरोध से उन्होंने मकान भी बनवा लिया। उसीमें रहने लगे और नित्य श्रीमद्रामायण की कथा बाँचने लगे।

यमुनाजी के उसपार तारिपतो नामक ग्राम में भरद्वाज गोत्रीय एक सरयूपारी ब्राह्मण रहते थे। वे कार्त्तिक शु० द्वितीया ( यमद्वितीया ) के पर्व पर सकुटुम्ब स्नान करने आये। स्नान-दान से निवृत्त होकर वे उस स्थान पर गए जहां तुलसी-सुत पं० तुलसीदासजी कथा कहते थे। वे व्यासजी को देखकर बहुत प्रसन्न हुए और उनके विषय में लोगों से पूछ-पांछ करके अपने घर चलेगये। फिर वे वैशाख में वहाँ आये और हाथ जोड़कर इस प्रकार सुन्दर वचन कहने लगे:— " गत महारात्रि के अन्तिम भाग में जगदम्बा ने मुझे स्वप्न में सचेत करके आपका शुभ नाम और ठाम बतलाया और आज्ञा की कि आप ही को अपनी कन्या अर्पण करूं। अस्तु, मैं ढूँढ़ता और पता लगाता हुआ यहाँ पहुँचा। सो अब देवीजी की आज्ञानुसार मेरी कन्या को अपनी किंकरी बनाइए। अर्थात् उससे विवाह कर लीजिये और मुझे इस संसार में रख लीजिये। क्योंकि यदि आप ऐसा नहीं करेंगे तो देवी के कोप से मेरा सर्वनाश होजायगा। अब मैं श्रीचरण को छोड़ कर कहीं जाही नहीं सकता।"

विप्र के वचन को सुनकर पण्डितजी विचार में मग्न होगए। कुछ देर बाद सङ्कोच सहित बोले—" मुझे विवाह करने की इच्छा नहीं है, आप किसी अन्य स्थान पर पधारें।" परन्तु उस ब्राह्मण ने नहीं माना और धरना पड़ा। दूसरे दिन जब उन्हों ने विवाह करना स्वीकार कर लिया तब उसने अन्न-जल ग्रहण किया।

उसने अपने घर जाकर ज्योतिषी से लग्न ठहराकर अपने उपरोहित द्वारा उसकी सूचना भेजदी। इधर ग्रामवासियों ने बरात की सब तैयारी करदी और ज्येष्ठ सुदी १३ सं० १५८३ गुरुवार को अर्द्धरात्रि के समय भाँवरी फेरी गईं। अनन्तर कोहवर में स्त्रियों ने मिलकर विद्वान्-दूल्हा को हास्य-परिहास में हरा दिया। तीसरे दिन माड़ो ( मण्डप ) का विधि-विधान सम्पन्न हुआ। विप्र ने श्रद्धा-भक्तिपूर्वक दान-दहेज देकर संतुष्ट किया। दुलही को बिदा कराकर महान् पण्डितराज घर लौटे और विवाहोत्तर विधि-व्यवहार को सम्पन्न किये।

पुर की स्त्रियां गुरुगृह में जाकर और दुलही के मुख को देखकर निहाल होगईं। सोहाग की रात में पण्डितराज ने जब घूँघट हटाकर उस चन्द्रवदनी का मुख देखा तब जिस प्रकार मेनका को देखकर महर्षि विश्वामित्र की दशा हुई थी उसी तरह उनकी भी हुई। उन्हों ने प्राण-प्रिया के ऊपर अपना मन न्यवछावर कर दिया। दिन रात उसी रंग में रँगे रहते। विषय-सुख का उपभोग करते, पर तृप्ति नहीं होती। इस प्रकार पांच वर्ष काम-सुख-भोग-विलास में एक पल के समान बीत गए। अपनी भार्य्या पर उनकी आसक्ति इतनी बढ़ी-चढ़ी हुई थी कि वे उसे

आँख की ओट नहीं होने देते थे। न स्वयम् कहीं जाते थे और न उसे कहीं जाने देते थे। प्रिया के विना उन्हें एक पल भी चैन नहीं।

## विराग

कईबार उसके मैहर से बुलावा आया परन्तु उन्हों ने बिदा नहीं की। एक दिन उसका भाई आया और यह समाचार लाया कि उसकी माता बहुत रुग्न है। एक बार देख-देखा लेना चाहती है। इस समाचार का प्रभाव उसके अन्तःकरण पर बहुत पड़ा। माता के प्रेम ने पतिव्रता को पति से दुराव करने के लिये आतुर किया। संयोग से उस दिन पण्डितजी अत्यन्त आवश्यक कार्य से बरखासन ग्राम को गए हुए थे। अस्तु, माता का मुख देखने और सखियों-सहेलियों से मिलने की इच्छा से सती विना पति की आज्ञा लिये अपने भाई के साथ मैहर चली गई। सन्ध्या समय जब पण्डितजी घर आये तब उसे सूना पाकर बहुत दुःखी हुए। पूछने पर दासी ने कहा—"अपने भाई के सङ्ग मैके गई हैं।" इस बात को सुनकर वे उठकर श्वशुरालय को चल पड़े। घोर आसक्ति की गोद में उनका मन-रूपी-शिशु सविशेष लाड़-प्यार से पला था। वे एक क्षण के लिये भी रुक नहीं सकते थे। किसी तरह वे नदी को पार करके कई कोस पैदल चलकर ससुराल पहुँचे। आधीरात होचुकी थी। सब लोग कपाट बन्द करके तरुण-निद्रा में सोये हुए थे। बहुत पुकारने पर सती सगबगाकर उठी और स्वर पहचानकर उसने द्वार-पट खोल दिया। उस कामिनी ने विमल उपदेश पूर्ण वचन हँसकर कहा—"नाथ! आप कैसे प्रेमान्ध की तरह चल पड़े, अन्धेरी रात का भी ख़्याल आपको नहीं हुआ! हा! जिस शरीर पर मुग्ध होकर आपने इतना कष्ट उठाया वह हाड़-मांस का ही पुतला है। इस नश्वर शरीर पर आपकी जितनी प्रीति है यदि उसकी आधी भी श्रीराम में होती तो इस संसार के बन्धन से अवश्य छूट जाते।"

ये वचन गुसाईंजी के हृदय में बाण की तरह चुभ गए। वे उसी समय लौट पड़े, एक क्षण के लिये भी नहीं रुके। उन्हें अपने सच्चे कल्याण की बात सूझ गई और गुरुका सारगर्भित अमृतोपम उपदेश चित्त पर चढ़ गया। वह उपदेश यह है:—

**'नरहरि' कंचन कामिनी, रहिये इनते दूर।**
**जो चाहिय कल्याण निज, राम दरस भरपूर॥**

पति के रुख को देखकर सती कोप-गर्भित वचन बोली—"पाणिगृहीता भार्य्या का त्याग किसी प्रकार भी उचित नहीं है। स्त्री के मुख में खरिया पोतकर ही ऐसा कर सकते हैं।

गुसाईंजी का साला दौड़कर पीछे पीछे गया। जब सबेरा हुआ और बहुत अनुनय-विनय करने पर भी वे नहीं लौटे तब वह निराश होकर घर लौट आया। यहाँ उसने देखा कि उसकी प्यारी बहन मूर्च्छित पड़ी है। कुछ देरतक उपचार करने पर उसकी मूर्च्छा भङ्ग हुई। सती बोली—"प्रियतम को सन्मार्ग का उपदेश देने के लिये आई हुई थी। सो प्रियतम तो वनको

चले गए, अब मैं क्या करूँ? अब मैं इस शरीर को त्याग कर प्राण को प्राण-प्यारे के पास भेज-दूंगी।" यह कहकर सती ने शरीर त्याग दिया वह पतिव्रताओं में श्रेष्ठ पति-भक्ति की ध्वजा फहराती हुई स्वर्ग को गई। संवत् पन्द्रह सौ नवासी १५८९ में आषाढ बदी १० (तदुपरान्त एकादशी) बुधवार को यह प्रसिद्ध घटना घटित हुई। वह घड़ी धन्य है, वह मुहूर्त्त धन्य है और वह संवत्सर, मास, तिथि एवं दिन धन्य है, इस बात की ख्याति सर्वत्र होगई। सब लोग इस घटना पर विचार करने लगे। किसी परमार्थवादी तत्त्वज्ञानी सिद्ध ने इसपर विचार करके कहा—"स्वयम् शारदाजी ने विप्रकुल में जन्म लिया था। उन्हों ने अपने अपार सौन्दर्य्य और दिव्य गुणों से पति की चित्तवृत्ति को एकाग्र करके उसे अपने में पूर्ण-रूप से आसक्त कर लिया था और प्रेम की पराकाष्ठा तक पहुँचा कर उसे अपने अपूर्व उपदेश से राग-रहित करके भगवत् के अनुराग में पुष्ट कर दिया। अपना काम करके वे दिव्य लोक को चली गईं।" इसी तरह एक दूसरे सन्त ने कहा—'उस स्त्री के मुख से आपरूप भगवान् ने वे उपदेश पूर्ण वचन कहे थे। उस शीलनिधान प्रभु ने ऐसा करके अपने प्यारे भक्त का मोह निवारण किया।"

## तीर्थाटन

गुसाईंजी सब से पहले तीर्थराज प्रयाग में गए। वहाँ त्रिवेणी में स्नान करके उन्होंने अपने को कृतार्थ माना। वहीं उन्होंने गृहस्थ वेष का विसर्जन करके मुनिवेष धारण किया। वहाँ से चलकर फफहागढ़ होते हुए गोमती और तमसा को पार करके वे श्रीरघुनन्दन की पुरी अयोध्याजी में आये। चातुर्मास्य (आषाढ़ शु० ११ से कार्त्तिक शु० ११ तक) सन्त-भगवन्त की सेवा में वहीं बिताया। वहाँ से प्रसिद्ध महाधाम जगन्नाथ पुरी को चले और कम से कम पचीस जगह टिकते-टिकाते पुरी में पहुँचे। उन पचीसों विश्राम-स्थलों में दो प्रधान हैं। क्योंकि एक जगह उन्हों ने एक व्यक्ति को शाप और दूसरी जगह दूसरे व्यक्ति को वर दिया था। दुबौली में हरिराम नामक विप्रकुमार को शाप देदिया था *। परिणाम-

---

* "वह खेलता कुएँ पर हमजोलियों के साथ। सब को चपत जमाता सब जोड़ते हैं हाथ॥
*
बचपन में बालकों को खिलवाड़ प्राण है। देखा उन्हों ने बैठा इक मुनि सुजान है॥
मुँह पर दुपट्टा डाले वह मग्न ध्यान है। सब ने चलाये ढेले जो दुष्ट बान है॥
*
जब मुनि के मुखकमल से वह चादरा हटा। सब भग गए थे एक हरीराम था डटा॥
मुनिनाथ यों तड़प कर बोले अरे निडर। निज दुष्टता से मुझ को सताता है ठान कर॥
*
यह राक्षसीय कर्म है राक्षस हो तू बिचर। यह घोर शाप सुनकर दौड़े सभीत नर॥
बालक को मुनिचरण पर बरबस लेटा दिया। बहु विध विनय भी शापोनुग्रह निमित किया॥
*
मुनिराज जिनके कोप से उनका अहित हुआ। गोस्वामि तुलसीदास थे पीछे विदित हुआ॥
—हरिराम ब्रह्म-चरित॥

स्वरूप वह प्रेत-योनि को प्राप्त हुआ था और उसी प्रेत की सहायता से आप को श्रीहनुमान्‌जी के दर्शन हुए थे। दूसरे प्रधानस्थान पर आपने चारुकुँवरि को वरदान दिया था जिसके प्रभाव से उसने साधु-सेवा व्रत लिया और करके दिखला दिया। *

जगन्नाथ पुरी में कुछ दिन वास करके गुसाईंजी ने श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की एक प्रति अपने हाथ से लिखकर तैय्यार की। पश्चात् वे रामेश्वर को चले। वहाँ से द्वारकापुरी पधारे फिर बदरिकाश्रम में गये। वहाँ नारायण ऋषि और महर्षि व्यास ने दर्शन देकर मानस की बड़ी प्रशंसा की। अस्तु, गोस्वामीजी ने अत्यन्त दुर्गम मार्ग से मानस सरोवर की यात्रा की। ठीक है, जो अपने प्राण का लोभ संवरण कर सकेगा वही मानस सरोवर पर पहुँच कर कृतार्थ होसकेगा। उस परम पुनीत स्थान पर दिव्य सन्तों के भवभ्रमहारी सत्सङ्ग से लाभ उठाते हुए कुछ दिन वहाँ रहगए। पुनः दिव्य सहायता पाकर वे सुमेरुपर्वत पर गए। वहाँ नीलाचल के दर्शन किए और परम सुजान काक-भुशुण्डि से सुपरिचित हुए फिर वहाँ से मानस सरोवर पर लौट आये और कैलासजी की परिक्रमा की।

इस प्रकार चौदह वर्ष, दस महीने और सत्तरह दिन में तीर्थाटन करके वे भवन में आकर रहे। चातुर्मास्य वहीं समाप्त किया। वहाँ बड़े उत्साह से श्रीमद्रामायण की कथा कहते थे और वनवासी सन्त आकर प्रेमपूर्वक उसे सुनते थे। उस वन में एक पिप्पल का वृक्ष था। उस पर एक प्रेत रहता था। गोस्वामीजी शौच के शेष जल को उसी वृक्ष के नीचे डाल दिया करते थे और उस प्रेत की प्यास उससे शान्त होती थी। उस प्रेत ने पहचान लिया कि जिस मुनि के शाप से वह उस योनि को प्राप्त हुआ था वे महात्मा यही हैं। अस्तु एक दिन उसने प्रत्यक्ष प्रकट होकर कहा–"आज्ञा कीजिए सेवा योग्य कार्य बतलाइए, मैं उसे करने को तैयार हूँ।" तब गुसाईंजी ने कहा–"मेरे मन में तो एक मात्र श्रीराम-दर्शन की ही लालसा है, और मैं कुछ नहीं चाहता।" यह सुनकर उस प्रेत ने कहा–"भगवान् मारुतनन्दन नित्य कोढ़ी के रूप में आपकी कथा सुनने आते हैं। सबसे पहले आते हैं और सबसे पीछे जाते हैं। सुअवसर विचार कर आप उनके चरण पकड़ लीजिए। और प्रेम पूर्ण हठसे उन्हें रिझाइये, बस काम बन जायगा"। गुसाईंजी ने ऐसा ही किया। अनेक प्रकार से विनय-प्रार्थना की और चरण पकड़कर पड़गए। भगवान् आञ्जनेय ने कहा–'कहो, तुम क्या चाहते हो?" गोस्वामीजी बोले–'श्रीरघुनाथजी का दर्शन करा दीजिए। यही मेरी इच्छा है"। श्रीपवनकुमार ने यह सुनकर गद्गद कण्ठ से कहा–'तुम चित्रकूट में जाकर भजन करो, वहाँ तुम्हें प्रत्यक्ष दर्शन प्राप्त होगा।"

---

* चेंफुल ग्राम में चारुकुँवरि नामक एक विधवा ब्राह्मणी रहती थी। वह वृद्धा और दरिद्रा थी। परन्तु उसका चित्त उदार था। वह भीख मांग कर और चरखा कातकर अपना निर्वाह करती और अतिथि-सत्कार भी करती थी। गोस्वामीजी भी उसके अतिथि हुए थे और उसके सात्त्विक अन्न की बड़ी प्रशंसा की थी। उसके दुःख पर दया करके आपने उसे यह वर दे दिया कि "जिस वस्तु पर तू अपना हाथ रखदेगी वह ख़र्च होने पर भी ज्यों की त्यों बनी रहेगी।" ( धरणीधर चरितावली )

**श्रीहनुमन्त प्रसंग यह, विमल चरित विस्तार।**
**लहेउ गोसाईं दरस रस, विदित सकल संसार॥**

अनन्तर "अब चित चेति चित्रकूटहिं चलु" "सब सोच विमोचन चित्रकूट" आदि पदों में तत्कालीन अवस्था का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी श्रीचित्रकूट के लिए चले। मार्ग में जाते हुए जब जब उन्हें निज कृत मन्द कर्मों का स्मरण आता था तब तब पैर पीछे हट जाते थे और धैर्य्य छूट जाता था। परन्तु साथ ही जब श्रीरामचन्द्रजी के सुन्दर शील स्वभाव की याद आती तब दर्शन के लिए आतुर हो मार्ग में दौड़ने लगते थे। इस प्रकार गुसाईंजी वहाँ पहुँचे। उन्हों ने श्रीरामघाट पर आसन जमाया। कुछ समय तक वहाँ निवास करने के उपरान्त एक दिन गोस्वामीजी परिक्रमा करने गये। वहाँ उन्हों ने देखा कि दो अत्यन्त सुन्दर राजकुमार घोड़े पर सवार मृगया के लिए वन में चले जारहे हैं। अतुलित छवि देखकर उनका मन मुग्ध होगया। परन्तु उन्हों ने यह नहीं जाना कि वे कौन हैं। पीछे श्रीहनुमन्त ने भेद बताया। सुनकर बहुत पछताये और पुनर्वार दर्शन के लिए बहुत लालायित हुए। श्रीपवनकुमार ने उन्हें यह कहकर विश्वास दिलाया और धीरज बँधाया कि "प्रातःकाल फिर दर्शन होंगे।"

अस्तु संवत् १६०७ की मौनी अमावास्या को प्रातःकाल गुसाईंजी, श्रीरामघाट पर युगल राजकुमारों की प्रतीक्षा में बैठ गए। उस दिन वहाँ बड़ी भीड़ थी। पर्व लगा था। सन्त महात्माओं की प्रचुरता थी। गोस्वामीजी बड़े प्रेम से चन्दन घिस रहे थे। भक्तवत्सल भगवान् प्रकट हुए। और बोले—"बाबाजी! मुझे भी चन्दन लगादो।" उसी समय श्रीमारुतनन्दनजी ने शुक का रूप धारण करके एक वृक्ष के ऊपर बैठकर गोस्वामीजी को चेताने के लिए, यह दोहा पढ़ाः—

**"चित्रकूट के घाट पर, भइ सन्तन की भीर।**
**तुलसिदास चन्दन घिसें, तिलक देत रघुवीर॥**

गुसाईंजी इस दोहे के मर्म को समझकर अत्यन्त विह्वल होगए। सुध बुध जाती रही। चन्दन घिसना छोड़कर अपार छविको निहारते हुए तल्लीन होगए। भगवान् ने श्रीमुखवचन को फिर दुहरायाः—"बाबाजी! मुझे भी चन्दन लगादो।" जब बाबाजी का ध्यान फिर भी आकर्षित नहीं हुआ तब भगवान् ने स्वयम् अपने करकमल से चन्दन होरसे पर से लेकर तिलक लगाया और उसी समय वे अन्तर्हित होगए। तब कहीं गुसाईंजी को होश हुआ। विरह से कातर हो वहीं पड़ गए। आँखों के मार्ग से उस दिव्य मूर्त्ति की झाँकी हृदय में प्रतिष्ठित होचुकी थी। उसी में निमग्न होगए। रात में श्रीहनुमान्जी ने आकर जगाया, उनका समाधान किया और श्रीरामरहस्य वर्णन करके उन्हें सन्तुष्ट किया।

## सर्पयोनि में प्राप्त मुनि योगश्री का उद्धार

श्रीहनुमान्‌जी ने शुक के रूप में जिस दोहे का उच्चारण किया था वह इतना प्रसिद्ध हुआ और लोगों ने उसे इतना पसन्द किया कि प्रायः नर-नारी हथेली पर पिंजड़ा लिए अपने अपने पालतू शुक को वही दोहा रटाने लगे। अब तक यह पाठ जारी है।

गोस्वामीजी की विमल भक्ति की महामहिमा तत्काल भूमण्डल पर फैल गई। एक दिन की बात है, गुसाईंजी श्रीकामद गिरि की परिक्रमा करते हुए श्रीलक्ष्मण पहाड़ी पर पहुँचे। तहाँ उन्हों ने मार्ग में पड़े हुए एक मनोहर श्वेत सर्प को देखा। उसे अच्छी तरह अवलोकन करने के बाद आपने कहा—"यह तो चन्द्रमा के समान उज्ज्वल बड़ा ही सुन्दर नाग है। भगवदीय सृष्टि की विचित्रता का वर्णन कौन कर सकता है। वेद-शास्त्र शेष और शारदा इसका वर्णन किया ही करते हैं पर पार नहीं पाते।" ऋषि की दृष्टि पड़ते ही उसका पाप छूट गया और इससे प्रभावान्वित होकर वह बोला—"नाथ! मुझे स्पर्श कीजिए, ऐसा करने पर मैं अभी तर जाऊंगा। अस्तु, गुसाईंजी के स्पर्श करते ही वह नाग अदृश्य होगया और उसके बदले मुनि योगश्री प्रकट होगए। उन्हों ने अपनी पूर्व कथा सुनाकर सुख-शान्ति प्राप्त की।

## सन्त समागम

इस समाचार को सुनकर और इस पर विचार कर बड़े बड़े सुजान सन्त दर्शनार्थ आने लगे और ऋषि के स्थान पर बड़ी भीड़ होने लगी। उस भीड़ को देखकर और बाहरी-भीतरी हानि विचारकर गुसाईंजी गुफा में छिप गए। मुनि, योगी, तपस्वी और यती दर्शनार्थ आते और निराश होकर चले जाते थे। एक दिन स्वामी दरियानन्दजी भी आये। उन्हें भी दर्शन नहीं प्राप्त हुआ। पर वे औरों की तरह लौट नहीं गए बल्कि वहीं टिक गए। जब गुसाईंजी लघुशङ्का के लिये बाहर निकले तब वे हाथ जोड़कर सामने खड़े होगए। और बोले—"नाथ! बड़ी अनीति होरही है। मेरे इस कटु वचन को क्षमा कीजिए। देखिये, आप लघुशङ्का के लिये तो बाहर निकलते हैं परन्तु साधु-सन्तों को दर्शन देने के लिये बाहर निकलना आवश्यक नहीं समझते। गुफाही में छिपे रहना अच्छा समझते हैं। इस कारण सज्जनों को महान् दुःख है। अतः मेरी प्रार्थना पर ध्यान दीजिए मैं अभी मचान बनवाये देता हूँ। उसी पर दिन में आपका आसन रहे ताकि सबको दर्शन का सुख प्राप्त होता रहे।"

स्वामी दरियानन्द की प्रार्थना स्वीकार की गई। मचान बना और गुसाईंजी उस पर दिनभर बैठे रहते थे और साधक, सिद्ध, सुजान सभी श्रेणी के लोग दर्शन से लाभ उठाते रहे। सत्संग का उमङ्ग नित्य नूतन चाव से बढ़ने लगा और सन्तों के पवित्र मन पर रसात्मिका भक्तिका रंग चढ़ने लगा। साथ ही गुसाईंजी भगवत् के नित्य विहार मृगयादि को देखकर कृतार्थ होते रहे।

वृन्दावन के महात्मा श्रीहित हरिवंशजी ने अपने प्रियशिष्य श्रीनवलदासजी को गुसाईंजी की सेवा में भेजा। वे आये, दण्डवत् प्रणाम किया और निज गुरु की दी हुई पुस्तकें "श्रीयमुनाष्टक" "श्रीराधासुधानिधि," और "श्रीराधिकातंत्र" सेवा में अर्पण किये। उसके साथ संवत् १६०९ श्रीकृष्ण-जन्माअष्टमी की लिखी हुई एक चिट्ठी भी थी। उसमें एक प्रार्थना थी। वही विनती श्रीनवलदासजी ने अपने मुख से दोहराई। उसका आशय यह था—'मेरे चित्त को ललचानेवाली महारास की राकारजनी (शरद्पूर्णिमा) अब आनाही चाहती है। मेरी एकान्त इच्छा है कि उसी महारास के पुण्यरस से रसावेशित होकर इस नश्वर शरीर का त्याग करूँ और श्रीकुञ्ज में प्रवेश करूँ। आपके शुभाशीष का अभिलाषी हूँ।" इस विनयपत्र को सुनकर गुसाईंजी ने "एवमस्तु" कहा और तदनुसार महात्मा श्रीहित हरिवंश जी ने शरीर त्याग कर नित्यनिकुञ्ज में प्रवेश किया।

अनन्तर श्रीस्वामी नन्दलालजी संडीले से आये और भक्तों के परम रक्षक "श्रीरामरक्षा स्तोत्र" की व्याख्या गुसाईंजी से पढ़ने लगे। छे महीने तक टिककर सत्संग से लाभ उठाते रहे। चलते समय स्मृति-चिह्न के लिए प्रार्थी हुए। गुसाईंजी ने उन्हें एक शालग्रामजी की सुन्दर मूर्ति, निज हस्तलिखित 'कवच" और कम्बल देकर बिदा किया।

इसीतरह महात्मा यादवप्रकाशजी, अनन्यमाधवजी, वेणीमाधवदासजी, चित्सुखाचार्य्यजी, करुणेशजी, सदानन्दजी, तपस्वी मुरारिजी, दिगम्बर परमहंसजी, विरही भगवन्तजी, सौभाग्यवती देवीजी, विभवानन्दजी, देवजी, दिनेशजी और दाक्षिणात्य पिल्ले स्वामीजी क्रमशः आते गए और दर्शन से कृतार्थ होते गए। सभी अपने रँग में रँगे हुए सत्संग-परायण होकर अहमादिक प्रगाढ़ निद्रा से जाग कर परम सुख और शान्ति के अधिकारी हुए। सब यही कहते थे कि "गुसाईंजी" धन्य हैं कि इस पृथ्वी पर जन्म लेकर और हमें दर्शन देकर उन्हों ने हमें कृतकृत्य कर दिया। बिदा होते हुए उनके नेत्रों से अश्रुधारा प्रवाहित थी, विह्वलता के कारण वे बोल नहीं सकते थे। प्रेम-प्रमोद से उनका हृदय परिपूर्ण था वे इसी अलौकिक दशा में प्राप्त होकर अपने अपने स्थान को गए।

इस प्रकार साधु समागम में आठ वर्ष बीत गए और जान न पड़ा कि किस तीव्र गति से समय कट गया। जब सोलह सौ सोलह संवत् लगा और गुसाईंजी श्रीकामद गिरि के निकट रहने लगे थे तब उस एकान्त प्रदेश में परम भागवत श्रीसूरदासजी आकर मिले। उन्हें श्रीगोकुलनाथजी ने श्रीकृष्ण-भक्तिरूपी सुन्दर रंग में अच्छी तरह रँगकर भेजा था। परन्तु गुसाईंजी ने एक ही कटाक्ष में उनकी सब चतुराई छीन ली।

महात्मा सूरदासजी ने नटनागर की पवित्र प्रेमकथा से पूर्ण स्वरचित "सूरसागर" दिखलाया। और उसमें से दो पद चुनकर, उन्हें गाकर, सुनाया। अनन्तर गोस्वामीजी के चरणकमलों पर मस्तक रखकर उन्हों ने प्रार्थना की—"भगवन्! कृपया यह आशीष दीजिए कि श्यामसुन्दर मुझपर रीझें और यह मेरी कृति सर्वत्र प्रचरित होजाय।" सुकोमल विनीत

वचनावलि को सुनकर श्रीगोस्वामिपाद ने उत्कृष्ट कविता के लिए उन्हें बधाई दी और उस पुस्तक को उठाकर हृदय से लगाया। हमारे चरित-नायक ने कहा—"भगवान् श्याम-सुन्दर तो सदा आपकी कविता का रस चखते रहते हैं और सेवक की रुचि रखना तो उनका सहज स्वभाव है। इसमें रत्ती भर भी संशय नहीं है, श्रुति और शेष इस दिव्य गुण की महिमा वर्णन करते हैं।"

महात्मा सूरदासजी वहां एक सप्ताह रहे और सत्संग से लाभ उठाते रहे। जब चलने लगे तब चरणकमलों में पड़ गए। गुसाईंजी ने बांह पकड़ उन्हें हृदय से लगाया, आश्वासन दिया और श्रीगोकुलनाथजी के नाम पत्र देकर उन्हें बिदा किया।

जब गुसाईंजी के प्रसाद से भगवान् श्यामसुन्दर की बांकी छवि हृदय में बसाकर और पत्रिका लेकर महात्मा सूरदासजी चले गए, तब मेवाड़ से सुखपाल नामक ब्राह्मण आया। वह श्रीमीराबाई का पत्र लेकर आया * गोस्वामीजी ने उस पत्र को पढ़कर उसके उत्तर में एक गीत † और एक कवित्त ‡ बनाकर लिखा। उत्तर-पत्र उस ब्राह्मण को देकर बिदा किया और ज़बानी भी कहला भेजा कि सब कुछ छोड़कर भगवद्भजन करने में ही भलाई है।

## प्रयाग-काशी होते हुए श्रीअवध जाना।

कुछ दिनों के पश्चात् नित्य प्रातःकाल एक बालक आने लगा और सुन्दर कण्ठ से गीत गाकर सुनाने लगा। उसके गानपर गुसाईंजी रीझ गए और चार नवीन पद बनाकर उसे दिया। दूसरे दिन उसने कण्ठ करके उन्हें सुना दिया। इसी तरह वह नित्य नया पद कण्ठ करता और दूसरे दिन गाकर सुनाता। प्रतिदिन नूतन पद के लिये अड़जाता और गोस्वामीजी को उसकी रुचि रखनी पड़ती। इसी बहाने गीतों की रचना होने लगी। महाकवि के

---

* स्वस्ति श्रीतुलसी गुण दूषण हरण गोसाईं। बारहिं बार प्रणाम करहुँ अब हरहु शोक समुदाई॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढ़ाई। साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई॥
बालपने से मीरा कीन्हीं गिरिधरलाल मिताई। सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूँ लगी लगन बरिआई॥
मेरे मात पिताके सम हौ हरिभक्तन सुखदाई। हमको कहा उचित करिबो है सो लिखिये समुझाई॥

† जाके प्रिय न राम वैदेही। सो छाँड़िये कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तात मातभ्रातासुतपतिहितइनसमानकोउनाहीं। रघुपति विमुख जानि लघु तृन इव तजत न सुकृत डेराहीं॥
तज्यो पिता प्रह्लाद विभीषण बन्धु भरत महतारी। बलिगुरु तज्यो कंत ब्रज बनितन भे मुदमंगलकारी॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं। अंजन कहा आँखि जौ फूटे बहुतक कहौं कहां लौं॥
तुलसी सो सब भांति परम हित पूज्य प्रानते प्यारो। जासों होय सनेह रामपद एतो मतो हमारो॥

‡ सो जननी सो पिता सोइ भ्रात सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो।
सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहब चेरो॥
सो तुलसी प्रिय प्रान समान कहाँ लों बनाय कहौं बहु तेरो।
जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो राम को होय सबेरो॥

हृदय में सुन्दर सुन्दर भाव उदित होने लगे। जब सोलह सौ अट्ठाइस संवत् लगा तब सब गीतों का सङ्कलन करके गोस्वामीजी ने एक ग्रन्थ तैयार किया और उसका नाम "श्रीरामगीतावली" रक्खा। फिर "श्रीकृष्णगीतावली" की रचना हुई। पुनः उभय ग्रन्थों का संशोधन और सम्पादन करके उन्हें बड़े प्रेम से लिखकर तैयार किया। अनन्तर उन्हें श्रीहनुमान्‌जी को सुनाया। श्रीमारुतनन्दन ने प्रसन्न होकर कहा—"अब तुम यहाँ से श्रीअवध को जाव और वहीं कुछ दिन निवास करो।"

इष्ट की आज्ञा पाकर वे चले और तीर्थराज प्रयाग में ठहरे। उसी समय मकर स्नान के लिए योगी, तपस्वी, संन्यासी और सत्पुरुष एवं चतुर और मूर्ख सभी श्रेणी के लोग आये हुए थे। पर्व बीत जाने पर छै दिन के बाद उन्हों ने देखा कि सुन्दर अक्षयवटकी सुखद छाया में दो मुनि बैठे हुए हैं। दोनों तपोपुञ्ज हैं और उनके मुख की कान्ति प्रदीप्त है। उसके सामने चन्द्रमा की समुज्ज्वल छवि छिप जाती है। दूरही से दण्डवत् प्रणाम करके वहीं हाथ जोड़कर खड़े होगए। उनमें से एक मुनि ने इशारे से उन्हें बुला लिया और अपने निकट आसन दिया। उस श्रेष्ठ आसन को हटाकर गुसाईंजी पृथ्वी परही बैठ गए। उन्हों ने अपना परिचय दिया और उनका परिचय प्राप्त किया। उन महात्माओं के एकान्त सत्संग में उसी श्रीरामकथा की चर्चा होरही थी जिसे उनके गुरु (श्रीनरहर्य्यानन्दजी) ने बालपन में, शूकरखेत में, वर्णन किया था। आश्चर्य्यचकित होकर गोस्वामीजी ने उसका गुप्त रहस्य उनसे पूछा। महर्षि याज्ञवल्क्य ने उत्तर में कहा—' देव देव महादेवजी ने इसकी रचना की, पीछे समय पाकर उसे भवानी को सुनाया। फिर भुशुण्डिजी को उसका उपदेश किया। मैंने जाकर भुशुण्डिजी से उसे प्राप्त किया और ऋषि भरद्वाज को सुनाया।"

इस प्रकार मुनिराज से गुह्य रामचरितमानस तत्त्व की परम्परा सुनकर वे चरणों में पड़े, युगल मुनीश्वर बहुत प्रसन्न हुए। तब सावधानतापूर्वक युगल मुनिवरों का विमल संवाद उन्होंने श्रवण किया।

दूसरे दिन जब वे उस स्थान पर गए तब उसे सूना पाया। न युगल मुनि थे न वह वट छाँह और न पर्णकुटी थी। वे विस्मय की बाढ़ में बह चले।

अस्तु, युगल मुनिवरों के शीलस्वभाव को स्मरण करते हुए वे वहाँ से चले। परन्तु भगवदिच्छा से वे काशी की ओर निकल पड़े। कुछ दूर चले जाने पर उन्हें विदित हुआ कि मार्ग भूल गये। तब यह विचारने लगे कि अब क्या करें, लौट चलें या इसी मार्ग का अवलम्बन करें। अन्त में उन्होंने यही निश्चय किया कि जो हुआ सो हुआ, अब इसी मार्ग से चलें, काशी में भगवान् शङ्कर का दर्शन करके श्रीअवध चले चलेंगे। यह सोचकर वे आगे बढ़े और चलते चलते गंगातट पर पहुँचे। फिर किनारे किनारे चलते रहे। जहाँ सन्ध्या

होजाती वहाँ टिक जाते। अस्तु, वे वारिपुर और दिगपुरके बीच में अवस्थित श्रीसीतामढ़ी * में पहुँचे। वहाँ आसन लगाते ही उनकी चित्त-वृत्ति केन्द्र-च्युत होगई। न भूख न प्यास और न निद्रा। विक्षिप्त की सी दशा होगई। साथ ही उनके हृदय में पूर्वजन्म के संस्कार जाग्रत् होगये। वहाँ श्रीसीतावट के नीचे तीन दिन रह गए और सुन्दर कवित्त † बनाकर, मानसिक उद्गार निकाल कर आगे बढ़े।

मार्ग में विन्ध्याचल ( चुनारगढ़ ) के राजा को बन्दीगृह से छुड़ाते हुए मुनिराज काशी पहुँचे। वहाँ प्रह्लादघाट पर एक ब्राह्मण के घर पर टिके। अनन्तर उनके हृदय में उमङ्ग की तरङ्ग उमड़ी और वे श्रीरामचरित का वर्णन करने लगे। परन्तु दिन में रची हुई कविता सावधानतापूर्वक सुरक्षित रखने पर भी रात को लोप होजाती थी। प्रतिदिन यह लोप-क्रिया होती रही। इस कारण वे बड़ी चिन्ता में पड़े। क्या करना चाहिये, कुछ समझ में नहीं आता था। आठवें दिन महादेवजी ने स्वप्न में आज्ञा दी कि "तुम अपनी मातृभाषा में काव्य की रचना करो।" निद्रा भङ्ग हुई और वे उठकर बैठ गए। मन में वही स्वप्न की ध्वनि गूँज रही थी। तत्क्षण भगवान् भूतनाथ भवानीजी के सहित प्रकट होगए। गुसाईंजी ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया। शिवजी ने कहा—" तुम अपनी मातृभाषा ही में काव्य की रचना करो। देववाणी संस्कृत के पीछे क्यों पड़े हो ? जिसमें सबका कल्याण हो वही करना चाहिए। केवल पूर्व प्रथा अथवा रूढ़ि का आदर करने के नाते सबके कल्याण की उपेक्षा करना कोई बुद्धिमानी का कार्य नहीं है। अब तुम अयोध्याजी में जाकर वास करो और वहीं अपने काव्य

---

* यह स्थान बी. एन. डब्ल्यू. रेलवे ( B. N. W. R. ) की बनारस-इलाहाबाद शाखा में भीठा स्टेशन के पास है। अबतक वारिपुर और दिगपुर दोनों ग्रामों का वही नाम चलाजाता है। वहाँ काशिराज के बनवाए हुए दो मन्दिर हैं। वहाँ एक खेत है जिसमें केश की तरह श्याम बारीक घास उपजती है। उस घास को कोई भी पशु-पक्षी नहीं खाते। लोग कहते हैं कि वे श्रीसीताजी के केश हैं। सचमुच यह स्थल अवश्य दर्शनीय है।

† जहाँ वाल्मीकि भये ब्याध ते मुनीन्द्र साधु मरा मरा जपे सिख सुनि ऋषि सात की।
सिय को निवास लव-कुश को जनम-थल 'तुलसी' छुवत छाँह ताप गरै गात की॥
बिपट महीप सुर सरित समीप सोहै सीताबट पेखत पुनीत होत पात की।
बारिपुर दिगपुर बीच बिलसति भूमि अंकित जो जानकी चरण जलजात की॥
मरकत बरन परन फल मानिक से लसै जटाजूट जनु रूप बेष हरु है।
सुषमा को ढेरु कैधौं सुकृत सुमेरु कैधौं सम्पदा सकल मुद मंगल को घरु है॥
देत अभिमत जो समेत प्रीति सेइये प्रतीति मानि तुलसी बिचारि काको थरु है।
सुरसरि निकट सोहावनी अवनि सोहै राम रवनी के वट कलि कामतरु है॥
देव धुनी पास मुनिबास श्रीनिवास जहाँ प्राकृतहुँ बट बूट बसत पुरारि है।
योग जप याग को बिराग को पुनीत पीठि रागिन पै सीठि डीठि बाहरी निहारि है॥
आयसु आदेश बाबू भलो भलो भाव सिद्ध 'तुलसी' बिचारि योगि कहत पुकारि है।
राम भगतन को तो कामतरु ते अधिक सीयबट सेये करतल फल चारि है॥
कवितावली।

की रचना करो। मेरे प्रसाद से वह काव्य-रचना सामवेद की ऋचा के समान सफला होगी।" *

इस प्रकार उपदेश देकर श्रीउमा-महेश्वर अन्तर्हित होगए। अपने भाग्य की सराहना करते हुए गुसाईंजी अयोध्यापुरी को चले। जिस दिन बादशाही दरबार में उदयसिंह को सम्मान प्राप्त हुआ उसी दिन भगवान् गोस्वामिपाद श्रीअवध में पहुँचे।

## श्रीरामचरितमानस का निर्माण।

अपराह्न में विमल सरयू-धारा में स्नान करके सरयू-पुलिन, वन-वाटिका और वीथियों में विचरने लगे। एक सन्त से भेंट हुई। वे कहने लगे—"चलिये, श्रीहनुमान्‌गढ़ी के निकट मैं आपको एक सुरम्य स्थान दिखलाऊँ।" अस्तु, वे सन्त गोस्वामीजी को लिवाकर वहाँ गए। उन्होंने उस रमणीक स्थल को दिखलाया। उस स्थान पर सुन्दर वटवृक्षों की विटपावली थी। उन वृक्षों में एक सुविशाल वटवृक्ष था। उसकी जड़ में सुन्दर वेदिका बनी हुई थी। उस वेदीपर अग्नि के समान तेजस्वी एक सुप्रसिद्ध सिद्ध सन्त सिद्धासन से बैठे हुए थे। उस मनोहर स्थल को देख कर गुसाईंजी का मन लुभा गया। वहाँ कुटीर बनाकर बसने की इच्छा उनके मन में स्वतः जाग्रत् हुई। जब वे टहलते टहलते उस सिद्ध सन्त के निकट पहुँचे तब उसने आसन छोड़कर जयजयकार की और कहा—"मेरे गुरु ने मुझे आज्ञा दी और उसी के अनुसार मैंने यहाँ वास किया। मेरे गुरु ने इसका मर्म भी मुझे बतलादिया था और उसे आज मैं प्रत्यक्ष देख रहा हूँ। श्रीगुरु भगवान् ने कहा था कि 'कुछ दिन बीतने पर गोस्वामी तुलसीदासजी यहाँ आकर श्रीरामचरित वर्णन करेंगे। वे आदि कवि वाल्मीकिजी के अवतार होंगे और श्रीपवनकुमार की सहायता से इस महान् कार्य को करेंगे। यही जानकर राजराज (कुवेर) ने इस स्थान पर वटवृक्ष लगाकर इसकी सर्वोत्तम मर्यादा बांध दी। अस्तु तू मेरी आज्ञा मानकर इस स्थान को परिस्कृत करके यहीं भजन कर। जब इस स्थान पर गोस्वामीजी उस महान् कार्य के निमित्त आवेंगे तब कुटी और आराम उन्हें सौंप कर तनु त्याग करके मेरे पास आना। गुरुजी का उपदेश मुझे अच्छा लगा और अनेक जन्मार्जित पुण्य का उदय हुआ। यहाँ वास करके, यहाँ के सुख का अनुभव करते हुए तपस्यापूर्वक मैं आपके आगमनकी बाट जोहता रहा हूँ। अस्तु, हे स्वामी! आप यहाँ सुखपूर्वक निवास करें। अब मैं अपने गुरु के पास जाता हूँ।"

ऐसा कहकर वे सिद्ध सन्त वेदिका पर से उतर पड़े, नमन करते हुए कुछ दूर चले गए। वहाँ आसन लगाकर ध्यानावस्थित होगए और योगाग्नि प्रकट करके एवं शरीर को उसमें भस्म करके परधाम को गए। इस लीलाको देखकर गुसाईंजी ने कहा—"हे धनुर्धर! तेरी बलिहारी है।"

---

* सपनेहु सांचेहु मोहिपै जो हर-गौरि पसाव। तो फुर होइ जो कहेउँ सब भाषा भनित प्रभाव॥

अस्तु, वहाँ सुख-सुपास पाकर गुसाईंजी बस गए। दृढ़ संयमपूर्वक समय बिताने लगे। एक समय थोड़ा सा दूध पी लिया करते थे। उन्हें केवल श्रीरघुनाथजी का भरोसा था। और किसी का डर नहीं था। इस तरह दो वर्ष बीत गए। परन्तु उनकी वृत्ति नहीं डिगी और संवत् १६३१ का आरम्भ होगया।

त्रेतायुग में श्रीरामजन्म तिथि पर जो ग्रह राशि, लग्न योग आदि पड़े थ वेही संवत् १६३१ की श्रीरामनवमी को भी पड़े। उस दिन प्रातःकाल मौमवार को श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए और संसार के कल्याण के निमित्त सबसे पहले उन्हीं ने गोस्वामीजी को अभिषिक्त किया। अनन्तर उमा-महेश्वर, गणेशजी, सरस्वतीजी, नारदजी, शेषजी, सूर्य-नारायण, शुक्राचार्य्य और बृहस्पतिजी ने मंगलमय आशीष दिए। इस विधि से विमल रामचरितमानस का आरम्भ हुआ जिसके श्रवण करने से मद, दम्भ, कामादिक विकार और सब प्रकार के संशय मिट जाते हैं।

दो वर्ष सात महीने और छब्बीस दिनों में अर्थात् संवत् १६३३ के मार्गशीर्ष मास में श्रीरामविवाह के दिन भवसागर से पार उतारने के लिए सात जहाज बनकर तैयार होगए। पाखण्ड और प्रपञ्च को दूर बहाने, पवित्र सात्विक धर्म के चलाने, कलिकाल के पाप-कलाप को नाश करने, हरिभक्तिकी छटा दिखलाने, मतमतान्तर के वाद-विवाद को मिटाने, प्रेमका पाठ पढ़ाने, सन्तों के चित्त में भजन की लगन उत्पन्न करने, सज्जनों के हृदय में प्रमोद बढ़ाने, हरिभक्ति शिवजी के हाथ में है—इस रहस्य को समझाने और वैदिक भक्ति-मार्ग को सुझाने के लिए सप्त सोपानयुक्त सद्ग्रन्थ बनकर तैयार होगया। मौमवार को मध्याह्न के समय "शुभमिति" "हरि ॐ तत्सत्" लिखा गया अर्थात् पुस्तक समाप्त हुई। देवताओं ने जयजयकार की और फूल बरसाये।

यह ग्रन्थ तो उसी दिन बनकर तैयार होगया था जिस दिन इसका आरम्भ हुआ था; परन्तु मनुष्य की निर्बल लेखनी ने उसे लिखने में इतने दिन लगा दिये।

श्रीगणेशजी ने उसी समय इस ग्रन्थकी पांच प्रतियाँ दिव्य लेखनी से लिखकर तैयार कीं। और सत्यलोक, कैलास, नागलोक, द्युलोक एवं दिग्पाललोक में वे तत्काल पहुँच गईं। यह रचना सबको पसन्द आई, सबके मनमें श्रीरामचरितमानस ने अपना स्थान प्राप्त कर लिया। देवताओं तक ने उसे प्रेमसे अपनाया। अस्तु, अमर, नर-नाग, सभी सम्प्रदाय के उदार चेता महात्माओं और सहृदय सज्जनों ने उसे शिरोधार्य्य किया और सबने शुद्ध मन, वचन और कर्म से गुसाईंजी के चरणकमलों की वन्दना की।

**बन्दों तुलसी के चरण, जिन कीन्हें जग काज।**
**कलि समुद्र बूड़त लख्यो, प्रकटेउ सप्त जहाज॥**

**और ग्रन्थ के विषय में उनकी उक्ति इस प्रकार है—**

**परम मधुर पावनि करनि, चार पदारथ दानि।**
**तुलसीकृत रघुपतिकथा, कै सुरसरि रस खानि॥**

अनन्तर श्रीहनुमान्‌जी प्रकट हुए। उन्हों ने अथ से इति तक सब सुना और सुन्दर वर दिया कि "यह कीर्त्ति त्रिभुवन को वश करनेवाली हो।"

उस समय जनकपुर के प्रसिद्ध सन्त स्वामी श्रीरूपारुणाजी श्रीअवध में आये हुए थे। वे विदेहराज के भाव के, वात्सल्य रसके सन्त थे। उन्हीं ने सबसे पहले श्रीरामचरितमानस को सुना। उन्हीं को मनुष्यलोक में गुसाईंजी ने सर्वप्रथम अधिकारी समझा।

उनके पीछे स्वामी नन्दलालजी संडीलेवाले के शिष्य श्रीदयालुदासजी एक प्रति लिखकर अपने गुरु के पास ले गए। उन्हें सुनाया और फिर यमुनातट पर रसखानजी को तीन वर्ष तक सुनाते रहे। तब से उस ग्रन्थ की अनेक प्रतियाँ लिखी गईं। कुछ औरों ने और कुछ स्वयं ग्रन्थकार ने लिखीं।

एक दिन श्रीगोस्वामीजी कनकभवन में बैठे हुए थे। शयन का समय था। श्रीमुक्तामणिदासजी ने भगवत् के शयनसम्बन्धी एक गीत * गाया। उसपर आप रीझ गए और कृपादृष्टि फेर कर एक क्षण में उन्हें सिद्ध सन्त बना दिया।

तत्पश्चात् श्रीरघुनाथजी की आज्ञा से आप काशीपुरी में गए और उमामहेश्वर को पोथी सुनाई। पाठ समाप्त करके आपने रात में शिवलिङ्ग के पास पोथी रख दी। सवेरे जब मन्दिर का पट खुला तब वहाँ पण्डित, मूर्ख, तपस्वी, और सिद्ध देखने के लिए जमा होगए थे। सबने सतृष्ण दृष्टि से देखा कि महादेवजी ने पुस्तक पर सही करदी है और दिव्याक्षरों में उसपर "सत्यं शिवं सुन्दरम्" लिखा हुआ है। साथ ही साथ मन्दिर खुलते ही उन्हें इसी प्रकार की दिव्य वाणी भी सुन पड़ी थी।

## कलिकाल का उपद्रव।

शिवजी की नगरी सर्व रसरंगमयी है। इस अद्भुत घटना का वृत्तान्त घर घर पट गया। सब नर-नारी प्रसन्न हुए, दौड़े हुए गुसाईंजी के पास गए, चरण वन्दना करके जय-जयकार करने और बलैयाँ लेने लगे।

---

* यह गीत इस प्रकार है—

सैन करहु रघुवीर पियारे।
हौं पठई आई कौसिल्या, बड़े भूप उठि सदन सिधारे॥ युगल वाम यामिनि बाती है, नयनन नीर भरे रतनारे॥ प्रफुलित शरद कोक नद मानो, मन्द समीर मलय कर धारे॥ रतन जटित मणिमय मन्दिर महँ रचि शुचि शोभित जनक सुतारे॥ मग जोवति सहचरी सिया की, सैन उचित सब सौंज संवारे॥ अति आलस युत भये हैं भरत युत, लषनलाल रिपुहन उजियारे॥ सुनत सबहिं दै पान बिदा करि, उठे दास मुक्ता मणि वारे॥

परन्तु पण्डित मण्डली चिन्ता ग्रस्त होगई। उन्हों ने समझा ( कलिकी प्रेरणा से ) कि अब तो हमारा मान और माहात्म्य उठ जायगा और जीविका में भी बाधा पड़ेगी; क्योंकि जब इस प्रसादमयी पोथी को लोग पढ़ेंगे तब कोई भी हमें नहीं पूछेगा। अस्तु, वे दलबांधकर उसकी निन्दा करने लगे और देववाणी की महिमा गाने लगे एवं प्राचीन रूढ़ि की दुहाई देने लगे। उन्हों ने उस ग्रन्थ के चुराने के लिए षड्यन्त्र रचा और वे अनेक प्रपञ्च किये। अन्ततो गत्वा निधुआ और सिखुआ नामक दो चोर रात में चोरी करने की इच्छा से गोस्वामीजी के स्थान पर गए और वहाँ के रक्षक त्रिभुवनधनी का दर्शन करके निहाल होगए। दूसरे दिन उन्हों ने गुसाईंजी से पूछा—" आप के स्थान में धनुष-बाण धारण किये हुए दो श्याम-गौर किशोर रक्षक कौन हैं जो रातभर जागकर पहरा देते हैं ?" इस प्रश्न को सुनकर, नेत्रों में जल भर कर गुसाईंजी ने कहा—" तुम धन्य हो कि तुम्हें साक्षात् भगवान् का दर्शन प्राप्त हुआ।"

इस वार्त्ता से चोरों को ज्ञान होगया। वे दुष्कर्म को छोड़कर और भगवद्भजन में तत्पर होकर तर गए। और गुसाईंजी ने सब वस्तुओं को लुटा दिया एवं श्रीरामचरितमानस की मौलिक प्रति ( जिसपर भगवान् शङ्कर के हस्ताक्षर रहे ) अपने प्रेमी टोडरमल के घर यत्नपूर्वक सुरक्षित रखदी *।

गोस्वामीजी ने एक दूसरी प्रति उस पुस्तक की तैयार की और उसी से अनेक प्रतियाँ लोगों ने लिखीं और लिखवाईं। उसका प्रचार प्रतिदिन बढ़ता हुआ देखकर पण्डितों के हृदय में बड़ा संताप उत्पन्न हुआ। उन लोगों ने वटेश्वर मिश्र नामक एक सुप्रसिद्ध तान्त्रिक से अपना दुःख रोकर सुनाया। उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके उस तान्त्रिक ने गुसाईंजी पर मारण-प्रयोग साधा और अपने इष्टदेव भैरवजी को हठपूर्वक भेजा। भैरवजी गये पर बजरंगबली जैसे रक्षक को देखकर भयभीत हो गए और लौट कर उन साधु लक्ष्य के बदले वटेश्वर मिश्र, अपने सेवक का प्राण लेकर ही सन्तुष्ट हुए।

पण्डितों का यह प्रयत्न भी विफल हुआ। तब वे अपना दल सजकर श्रीमधुसूदन सरस्वती के मठ पर गए। उन्हों ने उक्त स्वामीजी से कहा—"महादेवजी ने 'श्रीरामचरितमानस' को प्रामाणिक ग्रन्थ माना है सही परन्तु उन्हों ने यह नहीं बतलाया कि वह किस कोटि का है। वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास में से वह किसके समकक्ष है, इस बात का

---

* श्रीयुत टोडरमलजी, रईस बनारस, के घर वह अमूल्य पुस्तक चाँदी की मञ्जूषा में रक्खी गई थी और उसकी पूजा नित्य हुआ करती थी। उसके बारे में गुसाईंजी ने कह रक्खा था कि जिस दिन वह पुस्तक तुम्हारे घर से निकल कर दूसरे के घर जायगी, उसी दिन वह इस लोक से लोप होजायगी। ऐसा हुआ भी। कई पीढ़ियों के पीछे उस परिवार के नायक अनन्तमलजी हुए। उनकी एक परम प्यारी कन्या थी। उस पुस्तक में उसका अविचल प्रेम था; क्योंकि बालपन से वह नित्य उसकी पूजा किया करती थी। जब उसका विवाह हुआ और वह बिदा होकर ससुराल जाने लगी तब चुपके से उसने उसे अपनी डोली में रख लिया। रास्ते भर तो वह पुस्तक विद्यमान थी पर जब वह पति के गृह में उतरी तब वह लोप होगई। उसके वियोग में उस कन्या ने अपना शरीर ही त्याग दिया।

निर्णय होजाना चाहिये।" इसके उत्तर में यतिराज ने कहा—"मैं उस पुस्तक को मँगाकर पहले देख लूँ तब बताऊँ।" अस्तु, उन्हों ने उस ग्रन्थ को गुसाईंजी से मांग कर पढ़ा और परमानन्द को प्राप्त हुए। उसको लौटाते हुए स्वामीजी ने यह श्लोक बनाकर उस पर लिख दिया—

"जयति सच्चिदानन्दः।
आनन्दकानने ह्यस्मिन् जंगमस्तुलसीतरुः।
कविता मञ्जरी भाति रामभ्रमरभूषिता॥"

जब पण्डित लोग फिर आये और उन्हों ने निर्णयार्थ प्रार्थना की तब स्वामीजी ने उनसे कहा कि "इस बात को सदाशिवजी ही से क्यों न पूछ लीजिए।" तब सबके ऊपर वेद, उसके नीचे शास्त्र, फिर पुराण और सबके नीचे "मानस" रखकर मन्दिर में शिवजी के सामने रखदिया गया।

प्रातःकाल मन्दिर का पट खुला। सब लोग देखने के लिए टूट पड़े। परम पुनीत वेद के ऊपर "मानस" को देखकर पण्डितगण बहुत लज्जित हुए। वे गोस्वामीजी के चरणों में पड़े, अपराध क्षमा कराये और चरणोदक लेकर अपने अपने घर गए।

अनन्तर नदिया-शान्तिपुर के पं० रविदत्त शास्त्री आये। वे सभी शास्त्रों के ज्ञाता और आशु कवि थे। उन्हों ने हठपूर्व्वक गोस्वामीजी से विवाद किया और परास्त हुए। पराजित होने के कारण उनके मन में बड़ा दुःख उत्पन्न हुआ। क्रोध की वृत्ति जाग्रत् हुई। वे इतने क्रोधान्ध होगए कि गुसाईंजी को मारने पर उतारू हुए। वे घात में लगे। अवसर निकल आया। जब गोस्वामीजी अपने आश्रम से स्नान करने को निकले तब वे भी लट्ठ लिए पीछे पीछे चले। परन्तु जब उन्हों ने देखा कि स्वयं श्रीहनुमान्‌जी उनकी रक्षा कर रहे हैं तब वे भयभीत होकर भागे और अपनी करनी पर लज्जित हुए। इतना होने पर भी उनकी क्षुब्धवृत्ति शान्त नहीं हुई। उन्हों ने उस विषम मनोवृत्ति की तृप्ति के लिए दूसरी तदवीर ढूँढ़ ली। वे गोस्वामीजी की सेवा में गए। इधर वे प्रतिभाशाली विद्वान् और उधर गुसाईंजी सरल स्वभाव सन्त। महापुरुष को रिझा कर वर के लिए हठ करने लगे। गुसाईंजी वर देने पर राज़ी होगए। तब पण्डित ने यही वर मांगा कि आप काशीपुरी छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँ। वर देने पर मुनिराज काशी छोड़ने के लिए विवश हुए। उन्हों ने "काशीनाथ कहे निवरत हौं" * वाली कविता लिखकर और उसे श्रीविश्वनाथजी

* देवसरि सेवों वामदेव गाँव रावरे ही नाम राम ही के मांगि उदर भरत हौं।
दीबे योग 'तुलसी' न लेत काहू की कछुक लिखी न भलाई भाल पोच न करत हौं॥
येते पर हूँ जो कोऊ रावरो है जोर करै ताको जोर देव दीन द्वारे गुदरत हौं।
पाइकै उराहनो उराहनो न दीजै मोहि काल-कला काशीनाथ कहे निवरत हौं॥

के मन्दिर में देकर दक्षिण दिशा की ओर प्रस्थान किया। अभी बहुत दूर नहीं गए थे कि भगवान् भोलानाथ ने साक्षात् दर्शन देकर, आश्वासनपूर्व्वक समझा-बुझाकर उन्हें लौटा लिया।

उधर उस पण्डितराज ने सुना कि गुसाईंजी काशी छोड़कर चले गए। वे बहुत प्रसन्न हुए और उल्लसित हृदय से भगवान् के दर्शन को गए। ज्यों ही वे पहुँचे त्यों ही मन्दिर का पट बन्द होगया और आकाशवाणी हुई—"जाव, गुसाईंजी के चरणों पर गिरो, अनेक भाँति से अनुनय-विनय करके उन्हें मना लाओ और पुरी में बसाओ, नहीं तो तुम्हारा सर्वनाश होजायगा।"

गुसाईंजी लौट कर आगये। इस शुभ समाचार को सुनकर परमभक्त टोडरमलजी सेवा में उपस्थित हुए। उन्हों ने प्रार्थना की—"भगवन्! इस सेवक की बिनती सुनिये। असी पर घाटसहित भवन बन कर तैयार होगया है। अब वहीं सुखपूर्व्वक वास करके सबको सुख दीजिए। हम भी चरणकमलों की सेवा करके कृतार्थ हों।" इस विनय पर आप प्रसन्न हुए और उसी स्थान पर जाकर बसे और श्रीरघुनन्दन के गुणगान में तत्पर रहे।

रात्रि में कलिराज खड्गहस्त होकर पहुँचे और मुनिराज को त्रस्त करने लगे। कलिराज ने कहा—"आप अपनी पोथीको गंगाजी में फेंक दीजिए नहीं तो मैं अनेक प्रकार से ताड़ना देता रहूँगा। सावधान रहना।" इस प्रकार त्रस्त करके जब कलिराज चले गए तब मुनिराज भगवत् के ध्यान में तत्पर हुए।

श्रीहनुमान्जी प्रकट हुए। उन्हों ने कहा—"कलि मानेगा नहीं। वही इस समय शासन कर रहा है। यदि मैं उसे मना करता हूं तो वह और भी तुमसे वैर मान जायगा। इसलिए यही उचित है कि तुम विनयावली लिखकर मुझे दो। मैं सरकार में पेश करके उसे दण्ड दिलाऊंगा।" इस प्रकार मुनिराज द्वारा "श्रीरामविनयावली" की रचना हुई। उसे मान्य पार्षदों के साक्ष्य सहित सुनकर करुणावरुणालय श्रीरघुनाथजी ने मुनिराज को अभय कर दिया।*

## मिथिलापुरी की यात्रा।

अनन्तर गुसाईंजी ने मिथिलापुरी के लिये प्रस्थान किया और सुकृतीजनों को सुख-शान्ति प्रदान की। भृगुआश्रम में आप चारदिन रहे। वहाँ "बुआ" नाम से प्रसिद्ध, कुष्ठरोग के कारण करहीन वृद्धा के पापपुञ्ज को नाश करके आपने उसे कृतार्थ कर दिया।

---

* मारुति मन रुचि भरत की लखि लषन कही है।
कलिकालहुँ नाथ! नाम सों प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है॥ १॥
सकल सभा सुनि लै उठी जानी रीति रही है।
कृपा गरीबनिवाज की देखत गरीब को साहब बाँह गही है॥ २॥
बिहँसि राम कह्यो सत्य है, सुधि मैं हूँ लही है।
मुदित माथ नावत बनी तुलसी अनाथ की परी रघुनाथ हाथ सही है॥ ३॥

फिर हंसपुरा में आप एक दिन टिके। वहाँ परसी नामक एक रमणी उसी दिन वैधव्य को प्राप्त हुई थी। उसके करुण-क्रन्दन पर द्रवित होकर आपने उसके मृत पतिको जिलाकर उसका सोहाग बहुरा दिया।

अनन्तर गायघाट ग्राम में राजा गम्भीरदेव के अतिथि हुए। वहाँ दो दिन ठहरे। श्रीब्रह्मेश्वरनाथ महादेवजी का दर्शन करके चले और कांत-ब्रह्मपुर में गए। वहां पर प्रसिद्ध साधुसेवी सँवरू अहीर का पुत्र मँगरू मिला। उसने आपको दूध दुहकर श्रद्धापूर्वक प्रदान किया। आप प्रसन्न हुए और उसे वर दिया कि "यदि चोरीका व्यसन छूट जायगा तो तेरे वंश का नाश कभी नहीं होगा।" अबतक उसका वंश वर्त्तमान है।

वहाँ से चलकर बेलापतार नामक ग्राम में पहुँचे। श्रीधनीदासजी के मठ में उतरे। बाबा धनीदासजी मानसिक कष्ट से बहुत कष्टित रहे। उन्हों ने गुसाईंजी से इस तरह अपनी विपत्ति सुनाई—"भगवन्! कल मेरे प्राण हरण किये जायँगे। मैं बड़ाभारी पातकी हूँ। जब मैं राज-भोग थाल-भोग लगजाने पर बाहर निकालता था तब उसमें से बहुत कुछ खाया हुआ रहता था। उसे मैं सती-सेवकों को दिखाता था और सौगन्ध खाकर कहता था कि स्वयं भगवान् ने आपरूप प्रसाद पाया है। लोग आश्चर्य्य-चकित होजाते थे। इस बातकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई। लोग दर्शनार्थ आने लगे। समाचार पाकर भूमिपति रघुनाथसिंह भी आये। वे भी, देखकर आश्चर्य्य में पड़े। उनके मन में कुछ सन्देह हुआ। उन्हों ने मन्दिर में पैठकर अच्छी तरह देखा। एक आले पर उनकी दृष्टि गई जिसपर परदा पड़ा हुआ था। परदे को हटाकर उन्हों ने देखा कि एक मोटा चूहा उसमें बैठा हुआ है। उनके सन्देह की पुष्टि हुई। वे ताड़ गये कि यही चूहा असल में नित्यप्रति भोग लगाया करता है। अस्तु, मन्दिर से बाहर निकल कर उन्हों ने कोपयुक्त ये वचन कहे—'आज से एक मास के बाद मैं फिर यहाँ आऊँगा। उसदिन विना परदा डाले भोग-थाल रक्खा जायगा। यदि सबके सामने ठाकुरजी प्रसाद पावेंगे तो मैं अपना सर्वस्व ठाकुरजी के चरणों में अर्पण करदूँगा और यदि नहीं तो तुम्हें फाँसी दीजायगी।' सो हे नाथ! वह अवधि कल पूरी होगी और निश्चय ही मैं दण्ड-भाजन बनूँगा। इसी कारण मैं इतना चिन्तित हूँ।"

साधु की कारुणिक दशा पर मुनिराज को दया आई। उन्हों ने धनीदास को आश्वासन दिया। दूसरे दिन रघुनाथसिंह दलबल सहित आ धमके। साधु ने रसोई की। भोग-थाल मन्दिर में रक्खा गया। गोस्वामीजी की प्रार्थना पर श्रीठाकुरजी ने सबके सामने भोजन किया, साधु की पत रह गई। भगवान् की इस लीला को देखकर गुसाईंजी ने कहा—

**"तुलसी झूठे भगतकी, पति राखत भगवान।**
**जस मूरख उपरोहितहिं, देत दान जजमान॥**

गोस्वामीजी की महिमा से परिचित होकर रघुनाथसिंह आग्रहपूर्वक उन्हे अपना घर पवित्र कराने के लिये ले गए। वहाँ भक्तवर गोविन्दमिश्र मिले जिनकी दृष्टि पड़ते ही कठिन लोहा भी

पानी पानी होजाता था। खूब सत्संग का रंग जमा। मुनिराज ने बेलापतार का नाम बदलकर "रघुनाथपुर" रख दिया। अबतक यही नाम प्रचलित है।

वहाँ से चलकर आप हरिहरक्षेत्र में आये। संगम पर स्नान करके शीघ्र चल दिये और षट्पदी (षट्कोण पर प्रतिष्ठित) विदेहपुरी के निकट पहुँच गए। श्रीमिथिलेशनन्दनी ने एक बालिका का रूप धारण करके उन्हें भुलावा देकर खीर खिलाया और चलती बनीं। जब गोस्वामीजी को यह रहस्य विदित हुआ तब जैसी दशा उनकी हुई उसको कोई वर्णन नहीं कर सकता। श्रीकृपा को सोच-समझकर मनहीमन में आनन्दित होते रहे।

गुसाईंजी का आगमन सुनकर मिथिला के ब्राह्मण सेवा में आये। उन्हों ने अपनी विपत्ति इस प्रकार कह सुनाई कि "श्रीरामचन्द्रजी के विवाहोत्सव के उपलक्ष में हमारे पूर्वजों को दानस्वरूप हाला आदि बारह गाँव मिले थे, उन्हें इस सूबे के नवाब ने, जो बड़ा ज़िद्दी है, अपहरण कर लिया है। इस कारण हम सब बहुत कष्टित होरहे हैं।" ब्राह्मणों के मुख से आर्त्तनाद सुनकर गुसाईंजी को बड़ी दया आई। उन्होंने श्रीहनुमान्जी से कहकर उक्त नवाब को दण्ड दिलाया और बारहों गाँव की वृत्ति फिर दिलवा दी। विप्रवृन्द सुखपूर्वक परिवार सहित रहने लगे और गोस्वामीजी की कीर्त्ति गाने लगे।

अनन्तर गोस्वामीजी संवत् १६४० के लगते ही मिथिला से काशीपुरी को वापस आगए।

## साहित्यसेवा, महामारीशमन, सम्मिलन, प्रेतोद्धार।

महर्षि ने विमल अनुराग के साथ दोहावली का सङ्कलन किया। फिर सं० १६४१ में मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी रविवार को एक प्रति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की लिखकर तैयार की। पुनः सं० १६४२ में वैशाखशुक्ला श्रीजानकीनवमी को प्रेमाम्बु से सींचकर "सत्सई" लिखना आरम्भ किया।

तत्पश्चात् मीन के शनैश्चर के उतरते उतरते * काशीपुरी में महामारी का प्रकोप हुआ। लोग बहुत दुःखी हुए और ऋषिराजके पास जाकर पुकार की। करुणामय मुनि उनकी पीड़ा सुनकर द्रवीभूत हुए और एक कवित्त † बनाकर भगवत् से उसके शमनार्थ प्रार्थी हुए। श्रीकृपा से महामारी उसी समय शान्त होगई।

रसिक कवि केशवदासजी एवं सूक्ष्म भावरूपी आकाश में विचरनेवाले कविवर घनश्याम शुक्लजी गोस्वामीजी को कवि समझकर दर्शनार्थ आश्रम पर आये। बाहर बैठकर अपने आगमन की सूचना भेज दी। सूचना पाकर गुसाईंजी ने इतना ही कहा—"प्राकृत कवि केशव को

---

* महामहोपाध्याय पं० सुधाकर द्विवेदी ने निश्चय किया है कि चैत्र सुदी ५ सं० १६४० से ज्येष्ठ सं० १६४२ तक मीन के शनैश्चर रहे।

† एक तो कराल कलिकाल शूलमूल तामें कोढ़ में की खाजसी शनीचरी है मीन की।
वेद धर्म दूरि गये भूमिचोर भूप भये साधु सिद्ध मान जात बीते पाप पीन की॥
दूसरे को दूसरो न द्वार राम दयाधाम रावरोई गति बलि विभव विहीन की।
लागैगी पै लाज वा विराजमान विरुदहिं महाराज आज जो न देत दादि दीन की॥

भीतर आने दो।" इस वाक्य को सुनतेही केशवदासजी अपने मनमें अपनी तुच्छता विचार कर लौट चले। सेवकों ने उन्हें पुकारा, परन्तु यह कहकर कि कल भेंट करेंगे वे चले गए। घनश्यामजी, घासीरामजी तथा बलभद्रजी ठहरगए और दर्शन-सत्सङ्ग से लाभ उठाते रहे। रात-भर में रामचन्द्रिका तैयार करके केशवदासजी दूसरे दिन उसे लेकर पहुँचे। खूब सत्सङ्ग जमा, नवरसों के तरह-तरह के भाव-विभाव पर विचार प्रकट किये गये एवं प्राकृत और दिव्य विभूतियों के चित्र खींचे गए। केशवदासजी के मन का सङ्कोच मिट गया और हृदय में प्रीति उत्पन्न होगई।

कुछ दिनों के बाद आदिलशाही सूब्य के दानधर्म विभाग के अध्यक्ष पं० दत्तात्रेयजी श्रीतुलसी आश्रम पर आये। उन्हों ने महर्षि के चरणकमलों की विधिवत् पूजा की। आशीष पाकर उन्हों ने पुण्यप्रसाद के लिए प्रार्थना की। महामुनि ने अपनी हस्तलिखित पुस्तक श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण उन्हें प्रदान की। *

अमरनाथ योगी की स्त्री को किसी वैरागी ने हर लिया था। इस पर वह योगी क्रुद्ध हुआ और अपनी सिद्धाई के बल से उसने सब वैरागियों की कण्ठी-माला उतारली। साधुओं में बड़ा कोलाहल मचा। वे दौड़े हुए गोस्वामीजी के पास आये। सब हाल निवेदन कर वे उचित शासन के लिए प्रार्थी हुए। महर्षि ने सबको अपने अपने आसन पर चले जाने की आज्ञा दी। वे चुपचाप चले गए। आसन पर पहुँचने पर उन्हों ने अपनी कण्ठी-माला अपने आसन ही पर पाई।

पुनः एक अघोरपंथी सिद्ध "अलख" "अलख" कहता हुआ आया। गुसाईंजी ने उसकी सिद्धाई एक क्षण में हरली और बदे के सार तत्त्व का उपदेश दिया। †

नैमिषारण्य में एक धर्मात्मा ब्राह्मण रहते थे। संसार के मोह-द्रोह से परे उनकी वृत्ति थी। उनका शुभ नाम वनखण्डी था। वे नैमिषारण्य के लुप्त तीर्थों को फिर से स्थापित करना चाहते थे। तदर्थ वे सदाशिव मंत्र जपा करते थे। एक दिन धन्ना नामक एक प्रेत उनके पास आया। उसने उन्हें बहुत सा पृथ्वी में गड़ा हुआ धन देकर कहा—"आप इस

---

* यह वही प्रति श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण की मालूम होती है जिसे गोस्वामीजी ने संवत् १६४१ में लिखी थी; क्योंकि क्विन्स कालेज, बनारस के संस्कृत पुस्तक भाण्डार में जो उत्तरकाण्ड की एक प्रति सुरक्षित है उसके अन्त में लिखा हुआ है—

"इत्यार्षे रामायणे वाल्मीकीये चतुर्विंशतिसाहस्र्यां संहितायां उत्तर काण्डे स्वर्गारोहणकं नाम सर्गः॥ शुभमस्तु॥ समाप्तं चेदं महाकाव्यं श्रीरामायणमिति संवत् १६४१ समये मार्ग सुदि ७ रवौ लिः तुलसीदासेन"।

और उस प्रति के अन्तिम पृष्ठ की पीठपर यह श्लोक लिखा हुआ है—

"श्रीमद्येदिलशाहभूमिपसभा सभ्येन्द्रभूमीसुरः श्रेणीमंडनमंडलीधुरिदयादानादिभाजिप्रभुः॥ वाल्मीकेः कृतिमुत्तमं पुररिपोः पुर्या पुरोगः कृतिः दत्तात्रेयसमाह्वयो लिपि कृते कर्मत्वमाचीकरत्र॥"

† हम लखु हमहिं हमार लखु, हम हमार के बीच।
तुलसी अलखहिं का लखै, राम नाम जपु नीच॥

जन से शुभ [illegible] कीजिए और इस योनि से हमारा उद्धार कीजिये।" इस पर उस ब्राह्मण ने कहा [illegible] अच्छा, मुझे चारो धाम और सब तीर्थों में घुमा-फिराकर काशी में गुसाईं तुलसीदासजी के पास ले चलो। उन्हीं के दर्शन से तुम्हारा कल्याण होगा।" उस प्रेत ने वैसा ही किया अर्थात् आकाशमार्ग से सब तीर्थों का दर्शन कराकर असीघाट पर अधर में मड़राने लगा। इस अभूत-पूर्व दृश्य को देखने के लिए बड़ी भीड़ एकत्र होगई। बड़ा कोलाहल मचा। सभी उस दृश्य को देखने लगे। गुसाईंजी भी आश्रम से बाहर निकल आये। उनके मैदान में आते ही आकाश में जयजयकार की ध्वनि हुई। दिव्य रूप धारण करके विमान पर चढ़कर वह प्रेत वैकुण्ठ को गया। गोस्वामीजी के दर्शन के प्रताप से विधि की वामता मिट गई। बनखण्डी पृथ्वी पर उतर आये। उन्हों ने मुनिराज के चरणकमल को छूकर प्रणाम किया, सब वृत्तान्त कह सुनाया और सेवा में रहने लगे।

## नैमिषारण्य, वृन्दावनादि की यात्रा।

एक दिन बनखण्डी ने प्रार्थना की—"नैमिषारण्य प्राचीन सिद्ध पृष्ठ है। उसके प्रायः सब तीर्थ लुप्त होगये हैं। उनके पुनः स्थापन की मेरी एकान्त इच्छा है। यह कार्य बड़ा कठिन था। परन्तु भगवत् की दया से मेरा मार्ग प्रशस्त होगया है। प्रेत का दिया हुआ द्रव्य इस कार्य के लिये पर्याप्त है और लुप्त तीर्थों का पता बताने के लिए जो आप्त पुरुषों की आवश्यकता होती है वह भी श्रीचरण के दर्शन से पूरी होगई। अब आप कृपापूर्वक वहाँ चलें और अपने कर कमल से उन्हें स्थापित करें।"

उनकी प्रार्थना को स्वीकार करके मुनिराज काशी से चले। श्रीअवध में पहुँचकर वहाँ पाँच दिन टिक गए। वहाँ मन्दिरों में गानेवाले गायकों को आपने निज निर्मित "श्रीरामगीतावली" की एक प्रति प्रदान की और मनबोध त्रिपाठी को स्वर्णमयी अयोध्यापुरी का दिव्य दर्शन करा दिया।

वहाँ से चलकर रवनाही में टिके। पुनः शूकरखेत में गए। वहाँ से चलकर सियावार ग्राम में बसे। वहाँ श्रीसीताकूप का मधुरजल पान करके चले और लखनऊ में पहुँचे। गोमती के किनारे उतरे। वहाँ रहते हुए वे कहीं तो दुःखियों का दुःख दूर करते थे, कहीं साधुओं का हृदय आनन्द से भर देते थे, कहीं श्रीलषनलालजी का यशोगान करते थे, कहीं प्रेम में विह्वल होकर नाचने लगते थे, कहीं रामायण का गान कराते थे जिसमें बड़ा उत्साह प्रदर्शित होता था और कोलाहल मचता था, कहीं आर्त्तजनों का ताप हरते थे और कहीं अज्ञानियों के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करते थे। जैसे, दामोदर नामक एक भाट को आशीष देकर कवि बना दिया। वह काव्यकला में प्रवीण होकर बहुत धन और सम्मान प्राप्त करने में समर्थशील हुए।

वहाँ से आप मलिहाबाद में आये। वहाँ भक्त व्रजवल्लभ भाट को 'श्रीरामचरित्रमानस' की एक प्रति दी।

फिर कोटरा ग्राम में जाकर भक्तवर अनन्य माधवजी से मिले। "माता प्रति शिक्षा"* सम्बन्धी उनकी कविता सुनकर प्रसन्न हुए और उन्हें भक्ति का स्वरूप बतलाया।

वहाँ से आप बिठूर में गए। वहाँ रात भर रहे। सवेरे स्नान करते हुए पैर पङ्क में फँस गए। तुरत गंगाजी ने हाथ पकड़ कर खींच लिया; क्योंकि वृद्धावस्था ने शरीर को तपा कर उसका रस शुष्क कर दिया था और इस कारण शरीर शक्तिहीन होगया था।

वहाँ से आप संडीले गए। वहाँ गौरीशङ्कर मिश्र के घर को आपने इस लिए प्रणाम किया था कि आगे उसी घरमें स्वयं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी के सखा मनसुखा का जन्म होगा। कुछ दिनों के बाद सचमुच उसी घर में वंशीधर नामक एक पुत्र पैदा हुआ। वह बालकवि हुआ और गुसाईंजी की सरणि से लोगों को उपदेश किया † एवं रास का पद सुनकर शरीर त्याग दिया ‡।

उसको विमान पर चढ़कर स्वर्गारोहण करते हुए खैराबाद के प्रसिद्ध सिद्ध प्रवीण हलवाई ने देखा और अपने सत्संगियों को दिखलाया। वे देखकर निहाल होगए और सनातन उपदेश से कृतार्थ हुए।

मुनिराज जब संडीले से चले तब मार्ग में ठाकुर क्षितिपाल मिले। उन्हों ने अभिमान में चूर होकर दण्डवत् प्रणाम नहीं किया। इसी कारण वे दरिद्रावस्था को प्राप्त हुए। इसी तरह

---

* ऐसो सोच न करिये माता। देवलोक सुर देह धरी जिन किन पाई कुशलाता॥ पराक्रमी को भीषम से करन दानी से दाता। जिनके चक्र चलत है अजहूँ धरी न भई बिलाता॥ मृत्यु बांधि रावण बस राखौ भरो गर्भ भरो हाथा। तेऊ उड़ि उड़ि भये काल बस ज्यों तरुवर के पाता॥ सुनु जननी अब सावधान ह्वै परम पुरातन बाता। माधव अनन्य दास राम कियो कौन काहि से नाता॥

† वंशीधर के उपदेश—

"सुत बित नारि भवन परिवारा। दुखरूपी तोहि सब संसारा॥
जेहि तू मगन सो काम न ऐहैं। अजहुँ जरावत तबहुँ जरैहैं॥"

जिन्हें तू मगन तेरे तिन्हें ताकि देखो नगन कै निकार कै चढ़ाइबे को जीता है।
स्वप्ने की संपदा सुलभ साथ सबही के सोई हित लाग्यो हरिनाम अनहीता है॥
कहै मिश्र बंशीधर कबहूँ न आई मति जैसे चहूँ छहूँ ठहराइ गावै गीता है।
चैन नहिं परै मोपै तरी ताको चलौ हो अब सीताराम जपि ले जनम जात बीता है॥

‡ रासधारी वचन—

सुधि करत कमलदल नयनन की। वे दिन बिसरि गये मोहन को बाँह उसीसे सयनन की॥

इसी पद को सुनकर वंशीधर ने शरीर त्याग दिया। उनके वंशधर अब भी वर्त्तमान हैं। वह घर भी अबतक उसी रूप में है। वे लोग कहते हैं कि जब वंशीधर सात वर्ष के हुए तब कोई ब्राह्मण जगन्नाथजी के दर्शनार्थ गया। उसे दर्शन नहीं प्राप्त हुआ। स्वप्न हुआ कि जब तू संडीले में जाकर मेरे सखा मनसुखा (जो वंशीधर नाम से जन्मा है) का सीथ प्रसाद खाकर आवेगा तब तुझे दर्शन होगा। वह ब्राह्मण आया और उसने मनसुखा नाम लेकर पुकारा। वंशीधर उस समय सोया हुआ था। चौंक कर उठा, और प्रसाद देकर उसे बिदा किया।

वहाँ के ब्राह्मणों ने गुसाईंजी का अपमान किया, इसलिये वे भी धनहीन होगए और कायस्थों ने सम्मान किया, इससे वे धन-धान्य एवं वंश पाकर सुखी हुए। वहाँ के जुलाहे भी भेंट लेकर आए, मुनिराज के आशीष से वे भी धन-धान्य से सम्पन्न हुए।

इस प्रकार सर्वमान्य ऋषि नैमिषारण्य में पहुँचे। वहाँ तीन महीने रहकर शोधपूर्वक उन्हों ने सब तीर्थों को स्थापित किया और संवत् १६४१ के लगते ही वे पिहानी के शुक्लजी से मिले। वहाँ से खैराबाद में सिद्ध प्रवीण हलवाई को दर्शन देते हुए मिसिरिख को गए। साथ में वनखण्डी और दोचार शिष्य भी थे।

अनन्तर नावपर चढ़कर चले। एक ग्राम का नाम रामपुर सुनकर वहाँ उतर पड़े। परन्तु वहाँ के राजकर्मचारियों ने दुर्व्यवहार किया। अस्तु, सब माल-असबाब वहीं छोड़कर चल-दिये। जब राजा रामसिंह को इसका समाचार मिला तब वे दौड़े और चरणों में पड़े, बिनती करके गुसाईंजी को मना लाये। राजा ने उनका बड़ा सत्कार किया। मुनिराज ने वहाँ श्रीहनुमान्‌जी की स्थापना की और एक वटवृक्ष लगाया। उसका नाम 'वंशीवट' रक्खा और आज्ञा दी कि वहाँ प्रतिवर्ष मार्गशीर्ष सुदि ५ को रासलीला हुआ करे जो अबतक जारी है।

वहाँ से आप वृन्दावन को गए और श्रीरामघाट पर उतरे। लोग पहले ही से दर्शन के लिये उत्सुक थे। धूम मचगई। अच्छे अच्छे सन्त दर्शनार्थ आये और साधारण नर नारी भी दर्शन पाकर कृतार्थ हुए।

एक दिन श्रीनाभास्वामी से मिलने के लिये आप उनके स्थान पर गए। उन्हों ने आपका बड़ा सम्मान किया। उच्चासन पर पधरा कर विधिवत् पूजा की। पुनः ब्राह्मण, सन्त और स्वामी नाभाजी के साथ आप श्रीमदनमोहनजी के मन्दिर में गए। गोसाईंजी को श्रीरामोपासक जानकर भक्तवत्सल भगवान् ने धनुष बाण धारण करके दर्शन दिया और उन्हें कृतार्थ किया। *

---

* इसके सम्बन्ध में यह दोहा प्रसिद्ध है—

"का बरनउँ छवि आजकी, भले विराजेउ नाथ। तुलसी मस्तक तब नवै, ( जब ) धनुषबान लेउ हाथ॥"

इसपर आधुनिक लेखकों ने सन्देह प्रकट किया है और लिखा है कि "गुसाईंजी ने कृष्णगीतावली बनाया, सैकड़ों स्थानों पर कृष्णगुणानुवाद किया और स्वयं कृष्णलीला कराते थे, फिर ऐसी द्वेष की बात क्योंकर करेंगे।" परन्तु अब गोसाईंचरित से यह बात स्पष्ट होगई कि गुसाईंजी ने इस विषय में कुछ नहीं कहा। स्वयम् भगवान् ने उनकी निष्ठा का आदर करते हुए श्रीरामरूप से दर्शन दिया। गरुड़गर्वमोचन के समय श्रीहनुमान्‌जी के आने पर भी भगवान् ने ऐसाही किया था, यह बात पुराण-प्रसिद्ध है। इसके कारण यह घटना असत्य नहीं मानी जासकती। क्योंकि भक्तमाल के टीकाकारने भी इसका उल्लेख किया है और महाराष्ट्र कवि मोरोपन्त ने 'केकावलि' के अन्तर्गत 'तुलसीदासस्तव' में लिखा है "श्रीकृष्ण मूर्ति जेणें केली, श्रीराममूर्ति, सज्जन हो, रामसुत मयूरम्हणे, त्याच्या सुयशोमृतान्त मज्जन हो।" अर्थात् रामसुत मयूर कवि कहते हैं कि सज्जनो! जिन्हों ने ( अपनी उत्कट भक्ति के बल पर ) कृष्णमूर्ति को राममूर्ति बना दिया; उन ( तुलसीदासजी ) की उत्तम कीर्ति के अमृत-समुद्र में मैं सदा निमज्जन करूँ, यही मेरी इच्छा है।

इस अद्भुत लीला का समाचार जब बरसाने में पहुँचा तब मुनिराज के आसन पर बड़ी भीड़ लगगई। कुछ श्रीकृष्णोपासकों को, जिनके हृदय में साम्प्रदायिक द्वेष भरा हुआ था, भगवान् के धनुष-बाण धारण करने पर मोह उत्पन्न हुआ। गुसाईंजी ने "जन को प्रण राम न राख्यो कहाँ" * वाली कविता सुनाकर उनका समाधान कर दिया।

अनन्तर श्रीअवध में स्थापित करने के लिये दक्षिण देश से श्रीरामजी की मूर्ति लोग लिये जाते थे। यमुनातट पर, जहाँ गुसाईंजी ठहरे हुए थे, उन लोगों ने विश्राम किया। उदय-प्रकाश नामक एक भक्त ब्राह्मण उस मनोहर मूर्ति को देखकर मोहित होगया। उसके मनमें इस बात की प्रबल इच्छा हुई कि वह मूर्ति वहीं स्थापित हो। उसने गुसाईंजी के पास जाकर अपनी इच्छा प्रकट की। अस्तु, जब दक्षिणी लोग श्रीअवध जाने के लिये उस श्रीविग्रह को उठाने लगे तब वह प्रतिमा उनके उठाये उठी ही नहीं। लाचार होकर उन्हें उस मूर्त्ति को वहीं स्थापित करना पड़ा और गुसाईंजी का बताया हुआ "श्रीकौशल्यानन्दन" नाम रक्खा गया।

पुनः कान्यकुब्ज ब्राह्मण श्रीनन्ददासजी, जो आचार्य्य शेष-सनातनजी के पास पढ़े थे और इस नाते गुसाईंजी के गुरुभाई होते थे, आकर बड़े प्रेम से मिले।

अनन्तर महात्मा हित हरिवंशजी के पुत्र श्रीगोपीनाथजी आये। उनसे गुसाईंजी ने श्री-अवधकी महिमा वर्णन करते हुए कहा कि जिनका कहीं ठिकाना नहीं लगता उन्हें ही श्री-रघुनाथजी अपनी पुरी में बसाते हैं। घर जाकर श्रीगोपीनाथजी ने गोस्वामीजी के भोजन के लिए अमनिया भेजा। गुसाईंजी ने उसे यह कहकर लौटा दिया कि यह सखरा है, अमनिया नहीं है। जब उक्त महान्तजी ने आग्रहपूर्व्वक कहा कि नहीं, ऐसा नहीं है, अभी बाजार से मँगाया है तब गुसाईंजी ने हलवाइयों और वणिकों की दूकानों पर भगवान् बालकृष्ण को सब पदार्थ खाते हुए दिखला दिया।

इस प्रकार लीला दिखलाकर और भक्तों का हृदय आनन्द से भरकर मुनिराज ने श्री-चित्रकूट में जाकर वहाँ कुछ दिन निवास किया।

वहाँ सत्यकाम नामक एक ब्राह्मण गुसाईंजी के पास दीक्षा लेने के लिए आया। परन्तु-उसके मन में काम-विकार देखकर आपने उसे शिष्य नहीं किया। वह हठ करके वहाँ टिक गया। एक दिन रात में रानी कदम्बलता दर्शनार्थ आईं। उनका सुन्दर मुख अच्छी तरह देखने के लिए उस ब्राह्मण ने दीपक की बत्ती और तेज कर दी। उसकी चपलता देखकर मुनिराज ने उसे उचित शिक्षा दी। वह लज्जित होकर चरणों में पड़ा। मुनि ने कृपा करके उसके मन से उस विकार को दूर कर दिया।

---

* प्रभु सत्य करी प्रहलाद गिरा प्रकटे नर केहरि खम्भ महाँ।
झषराज ग्रस्यो गजराज कृपा तत्काल विलम्ब किये न तहाँ॥
सुर साखी दै राखी है पाण्डु बधू पट लूटत कोटिन भूप जहाँ।
तुलसी भजु सोच विमोचन को जन को प्रण राम न राख्यो कहाँ॥

पुनः एक वृद्ध और दरिद्र ब्राह्मण जीवन के कष्ट से तंग आकर श्रीमन्दाकिनीजी में डूबने चला। उसने जरा और दरिद्रता से छुट्टी पाने के लिए आत्महत्या करना ही उचित समझा। उसकी प्राणरक्षा के लिये ऋषि ने उसके हेतु दरिद्रमोचन शिला प्रकट कर दी।

अनन्तर दिल्ली से बादशाह ने अपना खवास गुसाईंजी को बुलाने के लिए भेजा। अस्तु, आप दिल्ली के लिये रवाने हुए। मार्ग में यमुनाजी के तट पर एक राजा को उपदेश देकर आपने उसे साधु बना दिया। उसे आपने श्रीराधावल्लभजी की उपासना बतलाई। उसने मन्दिर बनवाकर "श्रीश्यामाश्याम" को उसमें पधराकर भजन किया और भगवत् को रिझा लिया।

आगे चलकर ओड़छे में केशवदासजी ने, जो प्रेतयोनि को प्राप्त होगये थे, मुनिराज को घेरा। आपने दया करके उस योनि से उनका उद्धार कर दिया और वे विमान पर चढ़कर स्वर्ग को गए।

पुनः चरवारि के ठाकुर की कन्या का विवाह एक स्त्री ही से होगया था। जब उसने जाना तब उसे बड़ा दुःख हुआ। कारण यह था कि वरकी माता ने (वह पुत्रहीना थी) उसके जन्म से ही उसे पुत्र कहकर प्रसिद्ध किया था। उसीके अनुसार उसने वेष-भूषा भी रक्खी। जो लोग जान जाते थे उन्हें कुछ द्रव्य देकर अपनी ओर कर लेती थी इसी कारण से धोखा हुआ। विवाह होजाने पर सब हाथ मलमल कर पछताते और रोते थे। उन लोगों ने गुसाईंजी की शरण ली। सन्त को दया लगी। आपने निम्नलिखित क्रम से विश्राम लगाकर तदर्थ 'श्रीरामचरित्रमानस' का नवाह्निक पाठ किया। विश्राम के प्रथम शब्द इस प्रकार हैं:—(१) हिय (२) सत (३) कीन्ह (४) श्यामल (५) रामशैल (६) हारिपरा (७) कह मारुतसुत (८) जहँ तहँ (९) पुण्यं। पाठ समाप्त होतेही वह नारी से नर होगई *। सब लोग आनन्दित हो "जय तुलसी" और "जयजय सीताराम" कहने लगे।

वहाँ से चलकर पांचवें दिन मुनिराज दिल्ली पहुँचे। खबर पाकर बादशाह जहांगीर ने तुरन्त दरबार में बुला लिया। सम्मानपूर्वक आसन देकर करामात दिखलाने के लिये बादशाह ने बहुत आग्रह किया। गुसाईंजी के इन्कार करने पर उन्हें क़ैद कर दिया। श्रीहनुमान्‌जी की प्रेरणा से वहाँ असंख्य वानर प्रकट होकर उत्पात मचाने लगे। बेगमों के कपड़े फाड़ डाले और उन्हें नग्न कर दिया। बादशाह को पकड़ कर धड़ाम से पृथ्वी पर पटक दिया। राजमहल में हाहाकार मचगया। बादशाह ने उसी समय गुसाईंजीको बन्दी-गृह से मुक्त कर दिया, चरणों पर गिर कर अपराध क्षमा कराया और पीनस पर चढ़ाकर सम्मान-पूर्वक बिदा किया।

दिल्ली से चलकर आप महावन में आये। रात में आपने अहीरों की टोली में वास किया।

* तुलसी रघुवर सेवतहिं मिटिगो कालो काल। नारि पलटि सो नर भई ऐसे दीनदयाल॥

भगीरथ नामक ग्वाल पर आप रीझ गये और उसे सिद्ध सन्त बना दिया। दसवें दिन आप श्रीअवध पहुँचे। वहाँ दो सप्ताह तक रहकर मार्गश्रम दूर करते रहे।

एक दिन भक्त हरिदासजी ने एक पद गाया। उसमें कुछ अशुद्धियाँ थीं। आपने उसे सुधार दिया और शुद्ध पद गाने का निदेश किया। परन्तु भक्तजी को बोध नहीं हुआ और उन्हों ने कीर्त्तन करना ही बन्द कर दिया। श्रीरघुनाथजी ने गुसाईंजी से स्वप्न में कहा—"मैं हृदय के सुन्दर भाव को ग्रहण करता हूं। मेरी दृष्टि पद के शुद्धाशुद्ध पर नहीं रहती।" तब मुनिराज ने भक्तजी से जाकर कहा—"आप जैसा गाते हैं उसी तरह गाया कीजिए। भगवत् को वही पसन्द है।"

पुनः किसी गायक ने बालचरित्रसम्बन्धी कोई पद गाया। उसे सुनकर आप प्रेम में मग्न होगये और एक पाटाम्बर देकर आपने उसे सन्तुष्ट किया।

अस्तु महात्मा देव मुरारीजी एवं उनके शिष्य मलूकदासजी से मिलते हुए आपने काशी में अपने आश्रम पर पहुँच कर अखण्ड वास किया।

## काशी में अखण्डवास

एक बार माघ के महीने में महर्षि गंगाजी में स्नान करके नदी के भीतर ही मंत्र जप रहे थे। वृद्ध शरीर कांप रहा था और रोम खड़े हो गए थे। एक वेश्या किनारे पर खड़ी होकर देख रही थी। जब आप जल से बाहर निकले और वस्त्र पर जल छींटने लगे तब दो बूंद गणिका के ऊपर भी पड़ गए। उसके प्रभाव से वेश्या के मन में वैराग्य उत्पन्न हुआ। उसको नरक के विचित्र दृश्य दिखने लगे। उसने पाप-कर्म छोड़ दिया और उपदेश लेकर हरिभजन करने लगी।

पुनः हरिदत्त नामक एक महादरिद्र ब्राह्मण, जो गंगाजी के उस पार रहता था, मुनिराज के निकट आया। उसने अपनी विपत्ति कह सुनाई। उसकी दीन दशा पर दया करके ऋषि ने गंगाजीकी स्तुति* की और भगवती भागीरथी ने बहुत सी जमीन उसके लिये छोड़ दी।

गोस्वामीजी तथा भक्तिमार्ग का निन्दक भुलई साहु कलार मर गया। टिकठी पर उसे रखकर लोग उसे फूंकने के लिये ले गए। उसकी स्त्री विलाप करती हुई पीछे पीछे चली। मुनिराज बाहर ही बैठे हुए थे। उसने महाराज को प्रणाम किया। आपने उसे सदासोहागिन रहन का आशीष दिया। तब उसने रोकर अपने वैधव्य की बात जनाई। मुनिराज ने शव को वापस मँगाया और उसके मुख में चरणामृत देकर उसे जिला दिया।

उसी दिन से आपने बाहर बैठना बिल्कुल बन्द कर दिया। तीन कुमार बड़े सुकृती रहे और हमारे ऋषिराज के चरणों में उनकी बड़ी भक्ति थी। एक का नाम हृषीकेश था और वह

---

* बारि तिहारो निहारि मुरारि भये परसे पद पाप लहौंगो।
ईश ह्वै शीश धरों पै डरों प्रभु की समता बड़े दोष दहौंगो॥
बरु बारहि बार शरीर धरौं रघुबीर को ह्वै तव तीर रहौंगो।
भागीरथी बिनयों कर जोरि बहोरि न खोरि लगै सो कहौंगो॥

मणिकर्णिका पर रहता था। दूसरे का नाम शान्तिपद था और वह विश्वनाथजी के मन्दिर में रहता था। तीसरे का नाम दातादीन था और वह अन्नपूर्णाजी के मन्दिर में रहता था। तीनों की रहनी-सहनी समान थी। वे नित्य मुनिदर्शन को आते और चरणोदक लेकर घर जाते थे। उनके टेक-विवेक और प्रेम को पहचान कर मुनिराज केवल उन्हीं को कृतार्थ करने के लिये बाहर निकलते थे। उन्हें दर्शन देकर फिर भीतर चले जाते थे। यह देखकर अन्य दर्शक मुनिराज पर पक्षपात का दोष लगाते थे। एक दिन आपने परीक्षा ली और बाहर नहीं निकले। दर्शन के विना व्याकुल होकर तीनों कुमारों ने शरीर त्याग दिया। तब आपने चरणोदक देकर उन्हें जिलाया।

अनन्तर संवत् १६६९ में वैशाखी पूर्णिमा को पूर्ण आयु भोगकर भक्तवर टोडरमलजी ने शरीर त्याग किया। मित्र के विरह में सुधीर मुनि तीन दिनों तक बहुत दुःखी रहे। नेत्रों में जल भर कर मित्र के गुणों को मनहीमन समझते रहे * पांच महीने के बाद आश्विन सुदि त्रयोदशी को स्वर्गीय टोडरमलजी के दोनों पुत्रों के बीच आपने सब जायदाद बाँट कर पंच-नामा लिख दिया †

मड़ियाहू के रहनेवाले आशु कवि एवं नख-शिख के कर्त्ता श्रीभीष्मसिंहजी क़ानूनगोय

---

* चार गाँव को ठाकुरो मन के महामहीप। तुलसी या कलिकाल में अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को सिर पर भारी भार। टोडर कांधा ना दियो सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल टोडर गुनगन बाग। ये दोउ नयनन सींचिहौं समुझि समुझि अनुराग॥
राम धाम टोडर गये तुलसी भये असोच। जियबो मीत पुनीत बिनु यही जानि संकोच॥

## पंचनामे की नकल

† द्विरशरं नाभिसंधत्ते द्विस्थापयति नाश्रितान्। द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नैव भाषते॥ १॥
तुलसी जान्यो दशरथहिं धरम न सत्य समान। राम तजो जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान॥ २॥
धर्म्मो जयति नाधर्म्मस्सत्यं जयति नानृतम्। क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः॥ ३॥

श्रीपरमेश्वर

सवत् १६६९ समए कुआर सुदि तेरसी वार शुभ दीने लिषीतं पत्र अनंदराम तथा कन्हई के अंश विभाग पूर्वमु आगे जे आग्य दुनहु जनें मागा जे आग्य भैशे प्रमान माना दुनहु जनें विदित तफसीलु अंश टोडर-मलु के माह जे विभाग पदु होतरा—

| अंश अनंदराम | अंश कन्हई |
|---|---|
| मौजे भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह | मौजै भदैनी मह अंश पाँच तेहि मह |
| अंश दुहु आनन्दराम तथा लहरतारा | तीनि अंश कन्हई तथा मौजै शिपुरा |
| सगरेउ तथा छितुपुरा अंश टोडर मलुक | तथा नदेसरी अंश टोडर मलुक हील |
| तथा नयपुरा अंश टोडर मलुक हील | हुजती नास्ती |
| हुजती नास्ती | |
| लिषीतं अनंदरामजे ऊपर लिखा से सही | लिषीतं अनंदरामजे ऊपर लिखा से सही |
| साछी राघवराम रामदत्तसुत | साछी रामसिंह उद्धवसुत |
| इत्यादि | इत्यादि |

× × × × ×

मुनिराज के दर्शनार्थ आये। दर्शन करके भगवत् को स्मरण करते हुए उन्हों ने शरीर त्याग दिया।

कविगंग आये। उनके अन्तःकरण में स्पर्द्धा के कारण द्वेष भरा हुआ था। उसी द्वेष से प्रेरित होकर उन्होंने गोस्वामीजी को "कठमलिया वञ्चकभक्त" कहा और "हाथी कौन माला जपता था" यह वाक्य रोष-सहित कहते हुए चले गए। मुनिराज शान्तिरस में रँगे हुए थे। न कुछ बोले और न शाप दिया। क्षमा कर गए। उन्हों ने अपने मन में कहा—

**[शील गहनि सबकी सहनि कहनि हीय मुखराम।**
**तुलसी रहिये यहि रहनि सन्त जनन को काम॥]**

अनन्तर इस प्रकार भागवतापचार करके जब कविगंग जारहे थे तब मार्ग में एक हाथी मिला। उसने तुरत सूँड से लपेट कर उन्हें यमलोक को भेज दिया।

अब्दुर्रहीमखाँ खानखाना "कवि रहीम" ने बरवै छन्द में रचना करके गोस्वामीजी के पास भेजा। आपने भी उस छन्द को पसन्द किया और उसी सुन्दर सुकोमल वृत्त में "बरवै-रामायण" की रचना की।

पुनः मिथिलायात्रा में रचे हुए "श्रीरामललानहछू" "श्रीपार्वतीमङ्गल" और "श्रीजानकीमङ्गल"—इन तीन ग्रन्थों का सम्पादन करके उन्हें मन्त्रित किया ताकि उनके पाठ से सब लोगों को सुख प्राप्त हो।

अनन्तर आप बाहुपीर से व्याकुल हुए और उसके निवारणार्थ "श्रीहनुमान्बाहुक" की रचना हुई। फिर "वैराग्यसंदीपनी" और "श्रीरामाज्ञाशकुनावली" की रचना हुई।

धीर मुनि ने पहले के रचे हुए छोटे-छोटे ग्रन्थों को फिरसे दुहराया और उन्हें दूसरे से लिखवाया; क्योंकि वृद्धावस्था के कारण आपका शरीर बहुत शिथिल होगया था और उन्हें आप स्वयम् नहीं लिख सकते थे।

संवत् सोलह सौ सत्तर की समाप्ति पर बादशाह जहाँगीर दर्शनार्थ आये। उन्हों ने बहुत धन और धरती देने की इच्छा प्रकट की। परन्तु गुसाईंजी ने उसे अपनी वृत्ति के प्रतिकूल समझकर लेने से इन्कार कर दिया। फिर महाराज बीरबल की चर्चा चली। बादशाह ने उनकी वाग्विलास-पटुता और तीव्र बुद्धि की बड़ी प्रशंसा की। गुसाईंजी ने कहा—"ऐसी अच्छी बुद्धि पाकर भी उन्हों ने अपने को नहीं पहचाना और भगवत्भजन नहीं किया, इसका मुझे दुःख है।"

एक दिन अयोध्यापुरी का एक चोहड़ा (मेहतर) मिला। उसे आपने प्रिय अवधवासी जानकर और साक्षात् उसे रामरूप मानकर प्रेम में विह्वल हो हृदय से लगाया।

एक बार गिरनार के सिद्धवृन्द आकाशमार्ग से जाते हुए श्रीतुलसीआश्रम पर उतरे। गुसाईंजी का दर्शन करके निहाल होगए और सद्भाव से उन्हों ने प्रश्न किया—

**" तुमहिं न व्यापै काम, अति कराल कारन कवन ।**
**कहिय तात सुख धाम, योगप्रभाव कि भक्तिबल ॥"**

गोस्वामीजी ने उत्तर दिया—

**" योग न भक्ति न ज्ञान बल केवल नाम अधार ।"**

इस उपयुक्त उत्तर को सुनकर प्रसन्नचित्त सिद्ध लोग गिरनार को चले गए ।

एक दिन मुनिराज घाट पर बैठे हुए थे । वहाँ बहुत लोग जमा थे । सत्संग होरहा था । इतने में चन्द्रमणि नामक एक भाट आया और चरण वन्दना करके उसने इस प्रकार बिनती की ।

**" पन दो इक भोग विषय अरुझान अब जो रह्यो सो न खसाइयेजू ।**
**अबलों सब इन्द्रिन लोग हँस्यो अब तो जनि नाथ हँसाइयेजू ॥**
**मद मोह महाखल काम अनी मम मानस ते निकसाइयेजू ।**
**रघुनन्दन के पद के सद के तुलसी मोहि काशी बसाइयेजू ॥"**

इस विनय को सुनकर गुसाईंजी बहुत प्रसन्न हुए और बोले—" तुम यहाँ सदा सुखपूर्वक वास करके भगवत् गुण गान करते रहो ।

विप्रचन्द्र नामक एक हत्यारा आया । उसने दूर खड़ा होकर तीन बार " श्रीराम नाम " का उच्चारण किया । इष्ट का प्यारा नाम सुनकर आप मगन होगए और तुरन्त उसे हृदयसे लगा लिया । फिर आदरपूर्वक उसे भोजन कराया । और गद्गद कण्ठ से बोले:—

**"तुलसी जाके मुखनिते धोखेउ निकसे राम ।**
**ताके पग की पैतरी मेरे तनु को चाम ॥"**

यह समाचार काशी के प्रत्येक गली-कूचे में व्याप्त होगया । ज्ञानी, ध्यानी, वेदपाठी उद्भट विद्वान् सब लोग सन्ध्या समय वहाँ पहुँचे । उन्हों ने पूछा—"भगवन् ! वह हत्यारा विना प्रायश्चित्त के किस प्रकार शुद्ध हुआ ?" श्रीगोस्वामीजी ने कहा:—"श्रीरामनाम के प्रताप से ऐसा हुआ । आप वेद-पुराण में श्रीनाममाहात्म्य बाँच लें ।"

पण्डितोंने कहा—"वेद-पुराण में इसका उल्लेख है सही, परन्तु, उस पर विश्वास नहीं जमता ।"

गोस्वामीजी—"अच्छा, तो जिस प्रकार आप का मन माने वही उपाय बतलाइये ।"

तब पण्डितों ने इसके उत्तर में कहा—"यदि विश्वनाथजी का नाँदिया उसके हाथ से भोजन करले तो सब के मनमें विश्वास जमजाय ।"

मुनिराज के प्रभाव से ऐसा ही हुआ । चारों तरफ से जयजय की ध्वनि होने लगी और निन्दकों* ने बार बार चरणों पर पड़ पड़ कर अपना अपराध क्षमा कराया ।

---

* इसी अवसर पर निन्दकों की निन्दा सुनकर गोस्वामीजी ने यह कविता लिखी थी—

"धूत कहो अवधूत कहो रजपूत कहो जोलहा कहो कोऊ । काहू की बेटी से बेटा न ब्याहब काहू की जाति बिगार न सोऊ ॥ तुलसी सरनाम गुलाम है राम को चाहे कोऊ तो कहै कछु ओऊ । मांगि के खाब मजीठ में सोउब लेबे को एक न देबे को दोऊ ॥

एक ब्राह्मण गुसाईंजी के स्थान पर प्रतिदिन दिनभर लोभवश श्रीरामनाम रटता रहा और सन्ध्या समय स्वयम् श्रीहनुमान्‌जी उसे द्रव्य प्रदान करते रहे।

कमलभव नामक एक भगवत्-दर्शनाभिलाषी ने श्रीराम के दर्शन करा देने के लिये बहुत हठ किया। गुसाईंजीने उससे कहा—"वृक्ष पर से यदि त्रिशूल पर कूदसको अर्थात् यदि प्राण का लोभ संवरण करसको तो क्यों नहीं दर्शन होंगे?" उसने एक विशाल वृक्ष के नीचे त्रिशूल स्थापित किया। फिर उस वृक्ष पर चढ़कर उसपर कूदने के लिये बार बार चेष्टा करता रहा परन्तु उसकी हिम्मत नहीं होती थी। एक पछाहीं अश्वारोही ने उसके इस व्यापार को देखा। उसने उससे उसके विफल उद्योग का कारण पूछा। कमलभव ने अपनी कथा कह सुनाई। सुनकर उसने अपने मनमें विचारपूर्व्वक निश्चय किया कि महात्मा के वचन कभी असत्य नहीं होसकते। ऐसा विश्वास करके वह पेड़ पर चढ़गया और राम का नाम लेकर त्रिशूल पर कूद पड़ा। भगवान् ने उसी समय उसे दर्शन देकर कृतार्थ कर दिया।

अन्तसमय श्रीहनुमान्‌जी ने गुसाईंजी को तत्त्व-ज्ञान का बोध कराया जिसका सारांश यह है कि श्रीरामनाम वटबीज है और सारी सृष्टि सुविशाल वट वृक्ष के समान उसीमें निहित है।

परधाम यात्रा का शुभ मुहूर्त्त अत्यन्त निकट विचार कर और अपनी दशा पर ध्यान देकर गोस्वामीजी ने पुकारकर कहा—

**"रामचन्द्र यश बरनि कै भयो चहत अब मौन।**
**तुलसी के मुख दीजिये अबहीं तुलसी सोन॥"**

इस प्रकार संवत् १६८० में गंगाकिनारे असीघाट पर श्रावण बदि तीज शनिवार को श्रीगोस्वामीजी ने नश्वर शरीर त्याग कर परधाम यात्रा की। *

'मूल गोसाईंचरित" का जो नित्य पाठ करेगा वह गौरीजी, शिवजी और हनुमान्‌जी का कृपाभाजन बनकर अवश्य श्रीरामपरायण होगा।

संवत् १६८७ में कार्तिक शुक्ला नवमी को अपने पाठ करने के लिए श्री वेणीमाधवदासजी ने इस ग्रन्थ की रचना की।

इति। हरिः ॐ तत्सत्।

**बालकरामविनायक**
**श्रीकनकभवन अयोध्या**

* अबतक सब लोग यहीं जानते और मानते थे कि श्रावण शुक्ला सप्तमी ही गोस्वामीजीकी निर्वाण तिथि है परन्तु "मूल गुसाईंचरित्रकार के अनुसार वह तिथि श्रावणकृष्ण तीज है। यही ठीक है क्योंकि गोस्वामीजी के परमभक्त और मित्र टोडरमलजी के कुल में अबतक उसी तिथि को गोस्वामीजी का श्राद्ध होता चला आया है। यह बात हमें असी-काशीनिवासी श्रीयुत पं० विजयानन्द त्रिपाठी से मालूम हुई है और हमने स्वयम् भी असी पर जाकर इसका अनुसंधान किया और ठीक पाया।